अमिता

यशपाल

अभिशप्त

कहानी संग्रह

यशपाल

विप्लव कार्यालय, लखनऊ की ओर से

लोकभारती प्रकाशन

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

ABHISHAPT & *Other Stories* by YASHPAL Rs. 8. 50
Viplava Karyalaya, Shivaji Marg,
Lucknow 226001, INDIA

लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद-१ द्वारा
विप्लव कार्यालय, शिवाजी मार्ग,
लखनऊ की ओर से प्रकाशित

विप्लव कार्यालय सं० ११

सातवां संस्करण
फरवरी, १९७७

मूल्य : ८ रुपये ५० पैसे

साथी प्रेस
२१ शिवाजी मार्ग,
लखनऊ द्वारा मुद्रित

समर्पण

कर्मफल के अभिशाप में हमारा विश्वास परिस्थितियों से संघर्ष करने के उत्साह को निर्जीव कर हमें सजीव मृतक बनाये है।

······अजाने अपराधों के दण्ड को संतोष से भोगने वाले समाज, धन्य है तेरा धैर्य !

क्या कभी तू अनजाने की अपेक्षा जाने हुये में और अप्रत्यक्ष की अपेक्षा प्रत्यक्ष में विश्वास कर जीवन की इच्छा और अधिकार के लिये व्याकुल होगा ?

इसी आशा में असंतोष का विश्वास तुझे अर्पित करता हूं।

यशपाल

जून १९४४

क्रम

दास धर्म

वर्षा के आरम्भ में आन्द्रेकस जम्बूद्वीप के वाणिज्य-प्रवास से लौटा। दीमा की अवस्था देख उस का हृदय मुंह को आने लगा। दीमा का गुलाब का सा खिला कोमल मुख, विरह में वृक्ष से झर कर कुम्हला गये सेब की भांति पीला पड़ कर त्वचा सिकुड़ गई थी। नेत्र धंस कर दो सूखे घावों जैसे जान पड़ते थे। यदि आन्द्रेकस कुछ और मास विलम्ब से आता तो सम्भवतः पत्नी के स्थान पर उसे दीमा की समाधि का ही आलिंगन कर आंसू बहाने पड़ते।

मिलन के आंसू बहाती दीमा का सिर अपने हृदय पर दबा आन्द्रेकस ने निश्चय से कहा था···मुझे नहीं चाहिये भारत का धन। तुम्हें बिलखती छोड़ अब मैं कहीं न जाऊंगा। तुम्हीं मेरा धन हो। तुम्हें पाकर मैं सब सम्पदा पर लात मार सकता हूं। तुम्हें प्रसन्न देखने के लिये यदि मुझे बावेरू के बाजारों और गलियों में सिर पर बोझ उठाने की जीविका करनी पड़े या निकृष्ट किसान भी बनना पड़े तो वह भी मुझे स्वीकार है।

आन्द्रेकस और दीमा के दिन और रातें प्रेम-परिणय में घुल कर बीतते न जान पड़े। दीमा फिर पनप गई। उस के रक्तिम लौल ओंठों पर हास्य, आयत नील लोचनों में मादक हीरे और गालों पर इंगुर लौट

आया। एक संध्या आन्द्रेकस ने भारत के व्यापार-प्रवास से लाये बंग देश के झीने स्वर्ण-खचित वस्त्रों से दीमा को सजा, पाटलीपुत्र के जौहरी से खरीदा मरकत-मणियों का हार उस के गले में पहनाया। कान्यकुब्ज के अनमोल इत्र से उसे सुवासित किया। हाथी दांत से मढ़ा दर्पण उस के सम्मुख कर वह बोला—"देखो अपनी छवि, इस समय बावेरू, मिश्र और सीरिया के चक्रवर्ती सम्राट आन्तिओकस की पटरानी भी तुम से ईर्षा कर सकती है।"

दीमा अपने नखों की ओर देखती चुप रह गयी। उस की ठोढ़ी छू कर आन्द्रेकस ने पूछा—"क्यों प्रिये, चुप हो?"

पति के समीप आने पर दीमा ने अपनी बाह उस के गले में डाल, उस की दाढ़ी के पिंगल केशों में अपने सिर के केश मिला उत्तर दिया—"हां, इस समय मैं किसी भी पटरानी से अधिक सुखी हूं परन्तु यह वस्त्राभूषण; इन के कारण मुझे कितना विरह सहन पड़ा?"

आन्द्रेकस ने दीमा को आलिंगन में ले व्यापार-प्रवास के लिये फिर समुद्र यात्रा न करने का निश्चय दोहराया।

× × ×

एक और वर्षा ऋतु बीत गई। भूमध्यसागर के तटवर्ती नगरों से बहुमूल्य वाणिज्य आ-आकर बावेरू के समृद्ध बाजारों में भरने लगा। महावणिक मरासस की द्रव्य-शालाएं बहुमूल्य पदार्थों से अट गयीं। मरासस ने अपने चतुर पुत्र को सम्बोधन कर कहा—"पुत्र, जिस वाणिज्य की बिक्री समय पर नहीं हो जाती उस के मूल्य को समय खा जाता है। वाणिज्य की सार्थकता ग्राहक के हाथ पहुंच जाने में ही है अन्यथा वह व्यापारी के लिये केवल चिन्ता और हानि का ही कारण बनता है। हमारे संग्रहालय वाणिज्य से पूर्ण हैं। गत वर्ष समुद्र यात्रा से लौटी हमारी नावों

की उचित व्यवस्था हो चुकी है। सीरिया के व्यापारियों के नाविक सार्थ (काफिले) यात्रा आरम्भ कर रहे हैं, तुम भी समय नष्ट कर यात्रा के लिये तैयार हो जाओ। वणिक का धर्म है, प्रमाद रहित हो अपने द्रव्य को बढ़ाना। जो द्रव्य बढ़ता नहीं, वह क्षय हो जाता है। सामूद्रिक वणिक का घर समुद्र में बहती नाव ही है और यात्रा ही उस का जीवन है। तुम्हारी आयु तक पहुंचते मैं चार बार जम्बू द्वीप की यात्रा कर चुका था, तीन बार समुद्र मार्ग से और एक बार हिन्दुकुश लांघ कर स्थल मार्ग से। यौवन ही व्यवसाय का समय है। बावेरू, सीरिया और मिश्र के सम्भ्रान्त वणिक युवकों के साथ तुम भी व्यवसाय-यात्रा में जाओ। भगवान जीयस तुम्हारा कल्याण करेंगे।

पिता के आदेश को सुन आन्द्रेकस मन दी मन विह्वल हो उठा। पिछली यात्रा से लौटकर देखा दीमा का विरह दुख से निर्जीव-प्राय: मुख उस की स्मृति में नाच गया। फिर से दूर यात्रा में आ, दीमा को दुखी न करने का अपना प्रण भी याद आया परन्तु पौरुष, आत्म-सम्मान और कर्तव्य के विचार ने उस की जिह्वा पर ताला लगा दिया। पिता की आज्ञा उस ने स्वीकार कर ली।

× × ×

दीमा सारी रात रोती रही। आन्द्रेकस उसे गोद में लिये बैठा रहा। दीमा की विह्वलता से उस का हृदय पिघल, कंठ रुंध गया। एक भी शब्द वह बोल न सका। ओंठ दबा अपने को वश में रखने का प्रयत्न किया। फिर भी गुलाबी हो गये नेत्रों से दो-चार बूंद आंसू टपक कर पिंगल मूछों की नोक और छोटी तिकोनी दाढ़ी के केशों के अन्त में झूल गये। दीमा के मुंदे नेत्रों से अविरल धारा बह रही थी। आन्द्रेकस की गोद और कंधे के वस्त्र उस से भीग गये। पलंग पर बिछा स्वर्ण तारों से खचित, सुदूर भारत से आया लाल वस्त्र जहां-तहां आंसुओं से भीग गया।

दीमा का नीरव क्रन्दन न थमा। अपने आलिंगन में उसे समेटे, ओंठ दबाये, आन्द्रेकस का हृदय भी रोता रहा। दोनों की विवश विह्वलता देख दीपाधार पर जलती दीप-शिखा स्तब्ध और निश्चल थी।

सूर्य की प्रथम किरणों के प्रकाश में बावेरू के सामुद्रिक महावणिक मरासस के विशाल प्रासाद पर शिलाओं से पड़े गोल कंगूरे सुनहरी हो गये। सूर्य की दुश्शील किरणें गवाक्षों से अन्तःपुर के कक्षों में झांकने लगीं। आन्द्रेकस से रहा न गया। विह्वल और शिथिल दीमा का आंसुओं से भीगा मुख अपने कंधे से उठा, उस की घनी पलकों में भरे आंसू चूम उस ने कहा—"मेरी दीमा, बस···इस समुद्र यात्रा में मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूंगा···धैर्य रखो!"

दीमा का अविरल मूक-क्रन्दन सिसकियों में बदल गया। वह अपने नेत्र पोंछने लगी। उसे अपने आलिंगन में और निकट समेट, ओठों से लगा आन्द्रेकस ने कहा—"अब क्यों रोती हो प्रिये! बचन देता हूं तुम्हें साथ ले चलूंगा। भद्र वंश की अनेक रमणियां अपने पतियों के साथ समुद्र-यात्रा में जाती हैं। महासेनानायक सीकस का तो जन्म ही नील नद के तल पर नौका में हुआ था। चिन्ता है, केवल जल-दस्युओं की।"

सुगन्धित दीपक के रक्तिम प्रकाश और झरोखे से झांकती सूर्य की किरणों के मिश्रण में दीमा के रो-रो कर क्लान्त पीले पड़ गये मुख पर मुस्कान और आंसुओं का मिश्रण झलक गया। आन्द्रेकस के गले में अपने बाहुप्राश को शिथिल कर उस ने कहा—"अब जाने दो न प्रिय; घाम फैल रहा है···दासी आती होगी।"

× × ×

बावेरू, सीरिया और मिश्र के यवन महावणिकों का सामुद्रिक सार्थ, अतलांतक महासागर के नीले तल पर श्वेत वस्त्रों की अट्टलिकाओं के समान ऊंचे पाल उड़ाता, दक्षिण दिशा की ओर चला जा रहा था। नावों

और पोतों का वह समुदाय अपनी विशालता और विस्तार के कारण नगर की भांति स्थिर जान पड़ता था। समुद्र की नियमित वायु की थपकियों से हिलोरें लेती इस नगर की नीली भूमि, सम्पूर्ण नगर को नियमित गति से थिरकाती रहती। इस गतिमान नगर में नागरिक जीवन की सम्पूर्ण आवश्यकतायें और विलासिता प्राप्त थी। समृद्ध वणिकों की सेवा के लिये पोतों पर दास और दासियां थीं, स्वादु भोजन और पान का प्रबन्ध था, आलस्य और विरक्ति को दूर करने के लिये वीणा, मृदंग और नर्तकी के नूपुरों की ध्वनि अविराम रूप से गूंजती रहती। सार्थ मगध-साम्राज्य के विलासी नागरिकों के लिये मध्य-एशिया, यूनान और रोम की विलास-सामग्री लिये जा रहा था। मध्य-यशिया, यूनान और रोम के ऐश्वर्य्य-शालियों के लिये भारत के अमूल्य वस्त्र, मणि-मणिक्य, और मसाले क्रय करने के लिये उन के पोतों में अमित स्वर्ण भरा था। उन्हें जल-दस्युओं की आशंका थी इसलिये सशस्त्र सैनिकों से भरी नौकाएं इस गतिमान समृद्ध नगर को घेर कर चल रही थीं। पर्याप्त धन देकर इन वणिकों ने प्रबल, प्रतापी सम्राट आन्तिओकस की जल-सेना की सेवा अपनी रक्षा के लिये क्रय कर ली थी।

महावणिक मरासस के पुत्र युवा आन्द्रेकस और उस की पत्नी दीमा के पोतकक्ष विशेष रूप से विलास की सुख-सामग्री से पूर्ण थे। आन्द्रेकस सार्थ के सम्मिलित प्रमोद से थक कर, दीमा के उत्तेजक माधुर्य से शान्ति और विश्राम देने वाले आलिंगन में उस के हाथ से रोम और एथेन्स की सुरा के प्यालों से शैथिल्य-जनित प्यास बुझाता। इस सुरा से कहीं अधिक मादक दीमा के ओठों से घूंट भरता वह दीर्घ यात्रा को पार किये जा रहा था। आत्म-विस्मृति के इन साधनों की भी उसे आवश्यकता न थी। अतलांतक महासागर की ही भांति दीमा के अतल और निस्सीम नयनों में वह स्वयं ही खोया था। अनेक प्रकार के जलवायु, फल-फूल, मनुष्य

और पशु-पक्षियों को देख दीमा विस्मय और आह्लाद से किलक उठती।

यवन सामुद्रिक वणिकों के सार्थ ने सिंहल-द्वीप में मुक्ताओं का भण्डार क्रय कर भारत के पूर्वी सागर में प्रवेश किया। सैनिक और नाविक दूने सतर्क रहने लगे। उस समय कलिंगपत्तन से ले गंगासागर तक भारत का पूर्वीय समुद्रतट, चक्रवर्ती दुर्दान्त सीमुक सातवाहन से अभय प्राप्त विक्रान्त जल-दस्युओं के आतंक से, यवन सामुद्रिक वणिकों के लिये श्मशान की भांति भयावह हो रहा था। इन दस्युओं द्वारा ध्वंस नावों के अंजर-पंजर और मस्तूलों से भारत का पूर्वी तट बिछ गया। गौरवर्ण, पिंगल केश, स्वस्थ और बलिष्ठ यवन दास-दासियां आंध्र के कृष्ण वर्ण नागरिकों की विशेष रुचि की वस्तु बन गये थे। राजप्रासाद और सामन्तों की दृष्टि में इन दास-दासियों का विशेष मूल्य था। स्वदेश और स्वजन से सदा के लिये बिछुड़, दस्युओं से मोल ले लेने वाले अपने स्वामी के, जिस की प्रसन्नता-अप्रसन्नता पर दासों का जीवन और मृत्यु निर्भर थी, यह दास विशेष विश्वास-पात्र बन जाते। इन दासों के विषय में समीपवर्ती प्रति-स्पर्धी और सामन्तों के गुप्तचर होने की भी आशंका न थी।

यवनों का नाविक सार्थ तट से पर्याप्त दूरी पर विशेष सतर्क भाव में गंगासागर के संगम की ओर बढ़ता जा रहा था। आन्द्रेकस धन के मूल्य में चिन्ता का उत्तरदायित्व सैनिकों और नाविकों के कन्धे पर छोड़, प्रमोद में मग्न था। सुरा और प्रणय की मधुर मादकता में रात्रि के दो पहर व्यतीत कर वह मधुर निद्रा में आत्म-विस्मृत हो जाता। भूमध्य के दो पहर तपे सूर्य की प्रखर किरणें भी उस की निद्रा भंग करने में असफल रह जातीं। उस निद्रा को समाप्त कर पाता उस से भी अधिक सुखद दीमा के सुवासित करों का स्पर्श और उस से अधिक दीमा के मधुर, अस्फुट प्रिय सम्बोधन।

ऊषा की लाली से रक्तिम पूर्व दिशा में शनैः-शनैः सूर्य का वृत्त क्षितिज

से उठ रहा था। यवनों के नाविक सार्थ के विशाल, शुभ्र पाल सामर्थ्य भर अनुकूल वायु उदरस्थ कर, सागर के शान्त तल पर गम्भीर मन्थर गति से व्यूह-बद्ध विराट राजहंसों के समान उत्तर की ओर बढ़ते जा रहे थे। नाविक और सैनिक सूर्य के दीप्त वृत को नमस्कार कर भगवान जीयस की कृपा के लिये धन्यवाद दे, मंगल की प्रार्थना कर रहे थे। तने हुये पाल सहसा आघात से नगाड़ों की भांति बज उठे। नाविकों ने देखा—पश्चिम दिशा से आई बाणों की बौछार ने पालों को छेद दिया है। नाविक-सार्थ में युद्ध का तूर्य बज उठा।

चौकसी के लिये नियुक्त श्येन-दृष्टि नाविकों और सैनिकों ने सूर्योदय से पूर्व ही पश्चिम दिशा में जल से मिली हुई एक धूसर-नीली रेखा की ओर सेनापति का ध्यान आकर्षित किया था। अनेक बार ध्यान देने पर भी उस रेखा को गतिहीन पा सेनापति ने उसे चट्टान-मात्र समझ उस की चिन्ता छोड़ दी थी। वह रेखा जल-दस्यु नौकाओं की पंक्ति ही थी।

सेनापति की आज्ञा से सभी पाल तान कर, बेड़े की गति बढ़ा, शत्रु की पहुंच से दूर हो जाने का यत्न किया गया। बाणों की बढ़ती संख्या ने इस चेष्टा को विफल कर दिया। सार्थ के सैनिकों को अपनी शक्ति पर विश्वास था। क्षुद्र शत्रु अभी उन के कृपाणों की पहुंच से दूर था। सेनापति ने आज्ञा दी, आत्मरक्षा के उद्देश्य से व्यूह रचना कर, सब पाल गिरा, बेड़े को स्थिर कर दिया जाय।

यवन धनुष-धारियों के लक्ष से बचने के लिये दस्यु नौकाएं एक दूसरे से दूर-दूर अर्ध-वृत में फैलती चली आ रही थीं। सभी नौकाओं के लिये एक ही लक्ष था, यवन सार्थ परन्तु सार्थ के लक्ष-बेधियों के लिये छोटी-छोटी नौकाओं के रूप में सौ से अधिक अस्थिर लक्ष थे। यवन योद्धा ढाल-तलवार ले दस्युओं के समीप आने की प्रतीक्षा उन के बाणों को सहते हुये विफलता से कर रहे थे। आन्द्रेकस अपनी निद्रा से जाग स्वयं कृपाण

हाथ में ले सेनापति के साथ युद्ध-संचालन के लिये प्रस्तुत था। दीमा को उस ने सुरक्षित स्थान में बिठा दिया।

समीप आने पर दस्युओं ने धनुषों पर जलते हुये मशाल चढ़ा यवन पोतों के पालों पर फेंकने आरम्भ किये। बेड़े में आग लग जाने से हाहाकार मच गया। दस्युओं की नौकाएं मधुमक्खियों की भांति घिर आईं और वे बेड़े पर टूट पड़े। अनेक नाविक, सैनिक, व्यापारी और उन के दास आहत हुये और भय से सुध-बुध खो जल में गिर पड़े। दस्युओं ने पराजित यवनों को निशस्त्र कर स्त्री-पुरुषों को बन्दी बना लिया। सशस्त्र दस्युओं के नियंत्रण में यवन नाविक बचे हुये बेड़े को आन्ध्र-तट की ओर ले चले।

× ※ ×

लूट का स्वर्ण, बहुमूल्य द्रव्य और बन्दी दास-दासियों को ले दस्युदल आन्ध्र के नगरों में पहुंचे। धन को संचय करने की प्रवृत्ति से हीन, आवश्यकता से अधिक धन पाये दस्यु-दल जहां पहुंचते मदिरालयों के स्वामी, वस्त्राभूषणों के विक्रेता और वेश्याएं लालायित नेत्रों और गद्गद् स्वर से उन का स्वागत करतीं। चतुर व्यापारी उन्मत्त दस्युओं से धनी बन, लूट में छीने उन के द्रव्य को सौदे के रूप में हथिया लेते और द्रव्यों के मूल्यों में दिये धन को मदिरा और दूसरे भोग्य-पदार्थों के मूल्य में लौटा

खोज में समुद्रतट की ओर चल देते। यवन दास-दासियां विशेष आकर्षण के पण्य थे। शारीरिक श्रम से घृणा करने वाले और वृद्ध नागरिक इन बलिष्ठ दासों की खोज में रहते। राजवंशी और सामन्त कहीं किसी दूसरे आश्रय की आशा न कर सकने वाले इन दासों को, जिन का अपने स्वामी के अतिरिक्त कोई न था, प्रजा से जिन का कोई सम्पर्क न था, अपनी शक्ति समझते थे। वृद्ध वेश्याएं, गौर वर्ण; पिंगल केश यवनियों के शरीर

से कौतूहलपूर्ण कामुकता का भरपूर मूल्य पाने की आशा करती थीं। बाजार में इन बन्दियों के आने पर उत्सव का सा समारोह हो जाता।

आन्ध्रपति महाराज सीमुक सातवाहन के अभयदान से ही दस्युदल का अस्तित्व था। उन की इस कृपा के प्रति कृतज्ञता से और राजभक्ति के कर्तव्य-स्वरूप द्रव्यों और दासों का प्रथम प्रदर्शन राजप्रासाद में होता। महाराज ने सिहल के वृहद आकार मुक्ता चुन लिये। उन की दृष्टि दासियों और दासों की पंक्तियों की ओर गई।

दीमा दासियों की पंक्ति में बैठी थी। उस के मूल्यवान वस्त्र कुचले जाकर विश्री हो गये थे। उस के नयनों की मादकता कातरता में और मुख की त्वचा का इंगुर भरा लायण्य भय की उदासी के पीलेपन में बदल गया था। दस्युओं ने उस के केशों की सुनहली आभा दिखाने के लिये वेणी खोल लटों को कंधों पर डाल दिया। उस के वक्ष पर त्वचा की कमनीयता दिखाने के लिये उस के कंचुकी का एक भाग फाड़ दिया गया। महाराज की दृष्टि उस की ओर जाती देख, हाथ में चमड़े का गांठदार कोड़ा थामे दस्यु ने उस को मुस्कराने का संकेत किया। मुस्कराने का प्रयास विफल रहा। महाराज की दृष्टि ठहर गई। दूसरे कुछ बन्दियों के साथ दीमा को महाराज की सेवा के लिये निर्वाचित कर लिया गया।

दासियों के पश्चात महाराज की शिविका (पालकी) दासों की पंक्ति की ओर गई। युद्ध में माथे पर लगे घाव से रक्त बह आन्द्रेकस के सिर के केश और दाढ़ी-मूंछ अब भी नारियल की जटा की भांति चिपक रहे थे। एक ओर खड़ी दीमा भगवान जीयस के चरणों में प्रार्थना कर रही थी—उस का पति भी राज-सेवा के लिये निर्वाचित हो जाय। जीवन भर के लिये वे एक दूसरे से खो न जायं।

दीमा की कातर याचना भगवान जीयस को स्वीकार हुई। महाराज की मर्मज्ञ दृष्टि ने आद्रेकस में बिशेषता पाई और दूसरे अन्य सुस्वरूप

दासों के साथ उसे भी राजकीय सेवा में ले लिया गया ।

कोमलांगी और चतुर दीमा को अन्तःपुर में राजमहिषी के प्रसाधन-कार्य में नियुक्त किया गया । कला-मर्मज्ञ महाराज ने दीमा के लोल-लावण्य और कण्ठ-माधुर्य का आभास पा, अवसाद के क्षणों का उपचार करने की सेवा के लिये उसे संगीत और नृत्य की शिक्षा दी जाने की आज्ञा दी ।

आन्द्रेकस ने विधाता की रेखा को अटल समझ अपने कर्तव्य को निबाहा । अपनी तत्परता और प्रतिभा से शीघ्र ही वह कठोर शारीरिक श्रम से मुक्त हो दासों का नियामक हो गया । स्वामी को ही 'एकमेव देव' समझ उस ने अक्षुण्ण स्वामिभक्ति की शपथ ली, वह महाराज का अत्यन्त अन्तरंग अंगरक्षक नियत हो गया ।

चैत की पूर्ण ज्योत्सना में स्फटिक-मण्डित प्रांगण में श्वेत पुष्पों का वितान तना था । शुभ्र पीठिका पर शुभ्र उपाधानों के सहारे, शुभ्र वस्त्र धारण किये, मुक्ता-माला पहने मेघवर्णा सामुक सातवाहन बैठे थे । दो यवनियां दायें-बायें श्वेत चंवर डुला रही थीं । महाराज की पीठ पीछे अंग-रक्षक दास आन्द्रेकस सेवा में प्रस्तुत था । सम्मुख, बीच का स्थान छोड़ अन्तरंग के सामन्त आसनों पर मण्डलाकार बैठे थे ।

अपनी शिक्षा समाप्त कर दीमा महाराज की प्रथम सेवा के लिये प्रस्तुत हुई । वह चांदी के सूक्ष्म तारों से खिचे महीन वस्त्र का लहंगा और कंचुकी पहने थी । उस के आभूषण मुक्ता और श्वेत फूलों के थे । उस के केशों, कण्ठ, कलाइयों और कटि में पुष्प-मालायें वलय, वेणी और मेखला के रूप में लिपटी थीं । कोमल पदों से चांदी के नूपुरों की ताल देते हुये वह महाराज के सम्मुख प्रस्तुत हुई । प्रांगण की स्फटिक-शिला पर मस्तक रख उस ने 'एकमेव स्वामी' महाराज को दण्डवत् किया ।

अवसर देख वीणा और मृदंग लय से बज उठे। दासी के कर्तव्य में दीक्षित होने के पश्चात इस समय प्रथम बार दीमा ने आन्द्रेकस को देखा। उस का मन हिलोर उठा। आंख भर अपने प्रणयी को देख दीमा ने नेत्र मूंद लिये। वाद्य की लय पर उस का शरीर गति करने लगा। तन्मय हो वह नाचने लगी, अपने आप को निछावर कर देने के लिये।

दर्शक स्तब्ध थे। महाराज मंत्र-मुग्ध भुजंग की भांति निश्चेष्ट और स्थिर रह गये। दास आन्द्रेकस के नेत्र भीग गये। अपनी प्रसन्नता और कृपा प्रकट करने के लिये महाराज ने साधुवाद दे, आदर के लिये नर्तकी को एक चषक सुरा सेवा में प्रस्तुत करने का अवसर दिया। विनयावनत दीमा ने सुरा-पात्र प्रस्तुत किया। चषक रिक्त कर महाराज ने नर्तकी को और नाचने की आज्ञा दी। दास आन्द्रेकस मूर्तिवत देखता रहा।

नृत्य के पश्चात सुरा, सुरा के पश्चात नृत्य। महाराज झूमने लगे।

आज्ञा पा नर्तकी पुन: सुरा-पूर्ण चषक ले प्रस्तुत हुई। महाराज ने प्रसन्न हो नर्तकी की बांह थाम उसे अंक में ले लिया।

सामन्त लोग शिष्टाचार से मस्तक नवा अनुपस्थित हो गये। वादक और शरीर-रक्षक परोक्ष में चले गये। केवल कर्तव्य-नियुक्त अन्तरंग अंगरक्षक दास अन्द्रेकस अपने स्थान पर निश्चल रहा।

महाराज सुरा और सौन्दर्य की मादकता से पूर्ण तृप्ति की चेष्टा में आत्मविस्मृत हो गये। दासी नर्तकी उन के अंक में तृप्ति का साधन थी। उस का कर्तव्य और धर्म था, महाराज की इच्छा।

महाराज शिथिल अंग हो निद्रा में बेसुध हो गये। मर्दित शरीर, मर्दित वस्त्र दासी उन के बहुपाश से मुक्त हो, ग्रीवा झुकाये राजपीठ के समीप खड़ी हो गई। अवसाद भरी दृष्टि उस ने दास आन्द्रेकस के भीगे नेत्रों में डाली और सिर झुका लिया।

आन्द्रेकस संज्ञाहीन-सा आगे बड़ा। दोनों के नेत्रों से आंसू बह चले।

आन्द्रेकस ने दीमा को अपने आलिंगन में बांध लिया। दोनों आवेश में मूढ़ हो गये।

निद्रा में बेसुध महाराज ने पीठिका पर करवट ली और स्फटिक-शिला-मडित प्रांगण पर गिर पड़े। सचेत हो उन्होंने दास और दासी को आलिंगनपाश में देखा। क्रोध में वे चीत्कार कर उठे।

लताओं की ओट से सशस्त्र शरीर-रक्षक दास निकल आये। दीमा और आन्द्रेकस के शरीर तुरन्त रस्सियों में बंध गये। दास की स्पर्धा, स्वामी की भोग्य नारी के स्पर्ष की ?

क्रोध से महाराज का हाथ कृपाण की मूठ पर गया परन्तु वे चुप रह गये।…इतने वीभत्स अनाचार का दण्ड क्षणिक यातना की मृत्यु से ? महापातक अपराधियों को विचार के लिये पुनः उपस्थित करने की आज्ञा दे, महाराज क्षुब्ध मन को स्थिर करने के लिये अन्तःपुर में चले गये।

कलिंग-अधिपति, धर्म-रक्षक महाराज सातवाहन ने धर्माचार्य, नीति-विज्ञ न्याय-मंत्री से जिज्ञासा की—ऐसे घोर अपराध का दण्ड क्या होना चाहिये ?

नीति और धर्म का विचार कर शास्त्रज्ञ मंत्री ने उत्तर दिया—ऐसे महापातक विश्वासघात का दण्ड है, अंग-अंग हाथी के पांव तले कुचल कर मृत्यु !

दारुण यंत्रणा से मृत्यु का दण्ड सुन दीमा सिर झुकाये खड़ी थी।

दयालु महाराज के क्रोध का आदेश न्यून हो गया था। उन के मस्तिष्क में गत रात्रि के उन्माद की स्मृति की क्षीण-सी रेखा चमक गई। आर्द्र स्वर में उन्हों ने कृपा की—"दासी मृत्यु से पूर्व क्या प्रार्थना करना चाहती है ?"

महाराज की करुणा से उत्साहित हो दीमा ने कम्पित, विनीत स्वर में प्रार्थना की—"धर्म-रक्षक महाराज ! यवनों के देश में मृतक शरीर

चिता पर भस्म न कर पृथ्वी में गाड़ दिये जाते हैं। हम दोनों अपने देश में पति-पत्नी थे। मृत्यु के पश्चात हमारे शरीरों को एक साथ समाधि दी जाने की दया हो। हम लोग स्वर्ग में फिर एक दूसरे को पा सकें।"

महाराज ने सम्मति के लिये शास्त्रज्ञ मंत्री की ओर देखा। मंत्री ने उत्तर दिया—"यह केवल पापमूलक अनाचार की प्रार्थना है। अन्नदाता, स्वामी के प्रति विश्वासघात कर स्वर्ग की आशा करना अधर्म है। दास का केवल एक धर्म है, प्रभु सेवा!"

दासों को अपने धर्म के प्रति सचेत करने के लिये मत्त-गज के पांव तले कुचल गये दीमा और आन्द्रेकस के क्षत-विक्षत शरीर राजप्रासाद के द्वार पर स्तम्भों से लटका दिये गये।

अभिशप्त

अमीनुद्दौला पार्क में प्रायः ही प्रदर्शनी, मेला या जलसा कुछ न कुछ हुआ ही करता है। मेले-ठेले के धक्के से परेशान हुए बिना तमाशे की [illegible] सकती है। इस विचार से इन जाड़ों में संध्या भोजन के बाद, मुंह में पान या शुक्लाजी के बच्चों के लिये जेब में लैमनड्राप ले, छड़ी घुमाता हुआ मैं प्रायः शुक्लाजी के बरामदे में जा बैठता।

शुक्लाजी स्वयं जैसे बैठकबाज और हंसोड़ हैं, उन की श्रीमती जी भी वैसी ही मिलनसार हैं। दिन भर कारोबार की चख-चख के बाद संध्या समय घण्टे-दो-घण्टे सभ्य और सुसंस्कृत लोगों के साथ बैठ बातचीत कर लेने से एक संतोष-सा हो जाता है।

शुक्लाजी के दोनों बच्चे लल्लू और सविता मेरे कदमों की आहट जीने से भांप जाते हैं। उन्होंने आंगन में ही घेर लिया। जेब खाली करते हुए पुकारा—"शुक्लाजी!"

आंगन के सामने वाले कमरे के परली ओर बरामदे से झांक मिसेज़ शुक्ला ने उत्तर दिया—"आइये न!...कैसे पुकार रहे हैं जैसे बिलकुल अपरिचित हों!"

बिजली की हज़ारों बत्तियों के प्रकाश में नीचे पार्क में प्रदर्शनी का

मेला भरा था। भीड़ अधिक थी। प्रसंग छेड़ने के अभिप्राय से मुस्करा कर मैंने पूछा—"इतनी भीड़; क्या आज फिर जालौन और फतेहपुर में आतिशबाजी का मुकाबिला है?"

बात रखने के लिये मुस्कराहट में सहयोग दे मिसेज़ शुक्ला ने कहा—"कुछ होगा ही, लोगों के जेब के पैसे खींचने के लिये कुछ न कुछ बहाना चाहिये।"

अपने अभ्यास के विरुद्ध ऊंचे स्वर में हंस कर शुक्लाजी ने कुछ न कहा। वह किरमिच की आराम कुर्सी पर पांव फैलाये बैठें थे, बैठे रहे। दांयें हाथ की उंगलियों में ठोढ़ी को टिकाये, पीठ पीछे की पटिया पर सिर धरे वह गम्भीर मुद्रा से जगमगाते प्रकाश में बावली हो रही भीड़ की ओर देखते रहे। दृष्टि दूसरी ओर रहने पर मेरे कुर्सी पर बैठ जाने की प्रतीक्षा में थे।

"क्या ज़माना आ गया..." चप्पल पर रखे अपने पांव हिलाते हुये वह बोले। शुक्लाजी की इस भूमिका में सहयोग देने के लिये श्रीमती जी के चेहरे पर से मेरे स्वागत के लिये क्षण भर को आयी मुस्कराहट विलीन हो गई—"अरे जाने क्या होने वाला है दुनिया में..." एक गहरी सांस खींच उन्होंने गर्दन घुमा ली।

इस प्रस्ताव से पर्याप्त गम्भीरता और उत्सुकता का वातावरण तैयार हो जाने पर धीमे-धीमे शुक्लाजी ने आरम्भ किया—"भाई, इस ज़माने में जो न जाय वही थोड़ा है। हां...यह जो गूंगे नवाब का अहाता है; जहां बम-पुलिस बनी है वहीं उस के साथ सटी हुई सी कोठरियां हैं। वहां पिछली रात खून हो गया खून! खून किया किसने?...पांच साल के बच्चे ने!" वे कुर्सी पर से लेटे उठ बैठे। अत्यन्त विस्मयजनक समाचार सुनाने के प्रयत्न में उन की आंखें स्वयं विस्मय से फैल गईं, "क्या विश्वास कर सकोगे?"
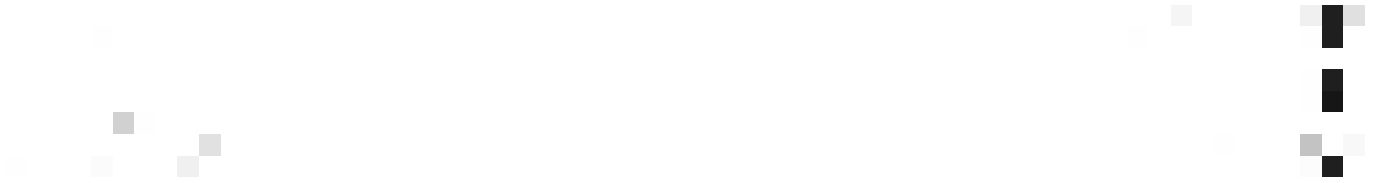
"पांच बरस के बच्चे ने खून तो क्या किया होगा"...मैंने विस्मय में सहयोग दिया, "कोई दुर्घटना बेचारे से हो गई होगी।...लड़के छत पर खेल रहे होंगे या पतंगबाजी...धक्का दे दिया हो ?"

समर्थन की आशा से मैंने श्रीमती शुक्ला की ओर देखा। उन के मुख पर विषाद की छाया गहरी हो गई थी। कुर्सी की पीठ पर रखे अपने हाथ पर गाल टिका उन्होंने एक और दीर्घ निश्वास लिया।

उत्तेजना में शुक्लाजी कुछ आगे झुक आये—"क्या कह रहे हो ?" दोनों हाथ के पंजों को बांध, संकेत से वे बोले, "खून ! गला घोंट कर खून !...पांच बरस के बच्चे ने !"

आश्चर्य से फैली मेरी आंखों ने पूछा—"कैसे ?"

"दीवार की ओर जो सब से पीछे कोठरी है, वहीं एक झल्लीवाला रहता है, ज्वाला। जात का अहीर। उस के एक पांच बरस का लड़का और तीन बरस की लड़की थी। झल्ली ढोने वाला क्या कमा लेगा ? कभी चार-छः कभी दो ही आने। अरे अमीनाबाद, फतेगंज से बोझ उठवा कर आप आधा मील या मील भर ले जाइयेगा तो दो-चार, हद छः पैसे दे दीजियेगा ? उस की अहीरन फतेगंज में दाल दलने जाती है तो दो-तीन आने, आधेक सेर अनाज ले आती है। किसी तरह दोनों बच्चों को पाल रहे थे। समय जैसा है, जानते ही हो। रुपये का बारह-चौदह सेर मिलता था तो अब अढ़ाई-तीन सेर मिलता है, वह भी अन्न नहीं, कुअन्न। किसी तरह रूखे-सूखे बच्चों का पेट भर रहे थे। इस पिछले सनीचर अहीरन के एक बच्चा और हो गया।

"अहीर झल्ली ढोकर जो कुछ ले आता, उसी में गुजारा चल रहा था। गुजारा क्या; चूनी-भूसी जो कुछ मिला, एक जून आधा पेट खाकर पड़े रहे। न हुआ बच्चों को खिला दिया, खुद जैसे-तैसे रात काट पर छाती के बच्चे का पेट कैसे भरें ? मां के दूध तो तब उतरे जब उस के

पेट में कुछ जाय ! मां दिन-दिन स्वयं सूखती जा रही थी। कहीं पानी के लोटों से दूध बनता है ? गैया को भी तो घास-भूसी कुछ चाहिये ही।"

गौ माता और नारी माता की इस तुलनात्मक चर्चा से मेरी दृष्टि श्रीमती जी की ओर उठ गयी। वह कुर्सी पर करवट से बैठी थीं। इस भोंड़ी बात से वह और भी घूम गयीं। उन की उपेक्षा कर शुक्लाजी कहते चले गये :

"आज क्या हुआ ? बाप तड़के ही झल्ली ले सब्जी मण्डी चला गया। चुटकी भर आटा जो कुछ था, मां ने लोटे में घोल दिया। दो-दो चुल्लू लड़के लड़की को पिला दिया। बच्चे अभी और मांग रहे थे। उन्हें डांट, मां ने थोड़ा सा घोल बचा लिया। छाती में दूध था नहीं। कपड़े की बत्ती से मां वही घोल नन्हें बच्चे को भी पिलाने लगी।

"मां की तबियत ठीक नहीं थी। उठ कर बम-पुलिस तक गयी। लौट कर आयी तो बेचारी की चीख निकल गयी। लड़का नन्हे बच्चे का गला घोंट बैठा था। बच्चे के प्राण निकल चुके थे। मां सिर नोच चीखने लगी।

"लोग इकट्ठे हो गये। बच्चों को धमका कर और पुचकार कर पूछा। लड़की ने सहम कर बताया—भैया ने नन्हें को मार दिया।

"लड़के को पुचकारा मिठाई का लालच दिया। कहता है; सुनिये, कहता है—अम्मा घोल हमें नहीं देती। नन्हें को पिला देती है। बड़ी भूख लगी थी। सुना आपने···? कैसा समय आ गया है।"

वितृष्णा के स्वर में मिसेज शुक्ला ने कहा—"देखिये न, इन लोगों के बच्चे इतनी ही उम्र में भी कैसे पक्के होते हैं। पांच बरस का बच्चा भी समझता है, उसका हिस्सा बटाने वाला उस का दुश्मन है। यह हमारी सविता इस सावन में पांच की हो गई, छठा लग रहा है। खाने को दो, थाली में कुत्ता मुंह डाल दे तो उलटा उसे प्यार करने लगती है।"

शुक्लाजी मेरी दृष्टि मिसेज शुक्ला की ओर से अपनी ओर आकर्षित करने के लिये ऊंचे स्वर में बोलने लगे—"अब कहिये, जिस देश में इतना पाप बस गया हो, वहां आकाल, महामारी, भूकम्प जो न हो जाय वही भगवान की दया समझो। ऐसे ही कर्मों की बदौलत तो देश दाने-दाने को तरसने लगा है···ओफ, दूध पीते बच्चों तक के दिल में बैर और हिंसा। इसी का दण्ड तो हम लोग भोग रहे हैं।"

अपनी कुर्सी पर कुछ और आगे बढ़ उन्होंने पूछा—"सोचिये, ऐसे बच्चों का आगे जाकर क्या बनेगा ?"

"भूख···" मैं कहना चाहता था। मेरी बात काट कर शुक्लाजी और ऊंचे स्वर में बोले, "अजी भूख नहीं तो ऐसे कर्मों का फल और क्या होगा ? ऐसे पापों का फल तो सर्वनाश होकर भी पूरा नहीं हो सकता।"

मन की अवस्था बहस करने लायक न रही। पाप के कारण और फल के सम्बन्ध में सोचता रह गया—जन्म से पाप करने के लिये मजबूर वह अभिशप्त क्या कभी पाप मुक्त हो सकेंगे···?

काला आदमी

एम० ए० शैक सुबह दिन चढ़े उठे । सिरहाने की खिड़की के कांच से छन कर सूर्य की किरणों ने उन की आंखों को चकाचौंध नहीं किया जैसे की पिछले दो सप्ताह से प्रातः हो रहा था । रात में दो कम्बल सांट कर सोये थे । सर्दी के ख्याल से या इसलिये कि नैनीताल आने के लिये इस महंगी में भी दो नये कम्बल खरीदे थे । लिहाफ से आराम मिल सकता है लेकिन वह पुराने ढंग की चीज नहीं हैं । इन का इस्तेमाल करने वाला दकियानूस मालूम होता है । विलायत में बर्फ पड़ती है लेकिन सब लोग कम्बल ही ओढ़ते हैं । साहब लोग लिहाफ इस्तेमाल नहीं करते ।

शैक की आंख खुली तो सर्दी न मालूम हुई बल्कि कुछ घुटता-सा लगा । सोचा क्लाउडी (बदली) है । ख्याल आया, पिछली रात की खुमारी भी हो सकती है । उसी समय यह भी याद आ गया कि आज नैनीताल छोड़कर नीचे जाना ही होगा । मन की उदासी से बन्द कमरे की हवा और भी बोझल जान पड़ने लगी । अस्पष्ट स्वर में शैक ने कहा—"ओ, इट्स स्टफ्फी (ऊंह घुट रहा है) !"

शैक ने पलंग पर करवट ले खिड़की से झांका । धौले धुंधले का धुंधलापन दृष्टि को रोक खिड़की के सामने खड़ा था । हाथ बढ़ा, चिटकनी हटा शैक ने खिड़की का किवाड़ खींच लिया । झीना-झीना सा धुन्ध

खिड़की की राह भीतर लुढ़क पड़ा । उस की शीतलता में सांस ले शैक फिर अस्पष्ट स्वर में बोला—नाइस (बहुत खूब) ! खिड़की के सामने से होकर बहुत महीन धुनी रुई या निर्गंध धुएं का बादल-सा गुजर रहा था । सामने झील के पार पहाड़ी की चोटी से लेकर प्रायः नीचे झील तक ऐसा ही दृश्य मलमल के-से पर्दों में छिपा दृष्टि से ओझल था । जहां-तहां एक के पीछे एक उड़ते चले जाते बादलों की ओट से किसी बंगले की लाल छत या सफेद दीवारें पल भर को झलक दिखा लोप हो जातीं।

नीचे झील के तरल, हरे फर्श पर भी बादल करवटें ले रहे थे। कभी झील के किसी भाग पर हरियाली झलक आती और उस में कोई थिरकती नाव कुछ क्षण दिखाई दे फिर अदृश्य हो जाती । इस धुंधले-धौलेपन के अम्बर में 'याट-क्लब' की पालदार नावें अपने स्थिर, श्वेत पाल उठाये ऐसे सो रही थीं जैसे कोई विशालकाय बत्तख अपना एक पंख ऊंचा उठा जल में डूब कर रह गई हों । दिखाई न पड़ने के इस सौन्दर्य से मुग्ध हो शैक कुछ क्षण खिड़की का किवाड़ थामे, स्थिर आंखों से देखता रह गया। पहुंच से बाहर आकाश में मंडराने वाले बादल उस के चारों ओर, उस के हाथों में और उस के कमरे से नीचे लोट-पोट हो रहे थे । फिर उस के होंठ हिले और अस्पष्ट स्वर में उस ने कहा—वल्लाह !

पलंग के सिरहाने तिपाई पर पड़े सिगरेट केस से एक सिगरेट ओठों में थाम उस ने दियासलाई की डिबिया पर सींक खींची । सींक का मसाला झड़ गया । वह सुलगी नहीं । तीसरी दियासलाई भी नहीं सुलगी बल्कि डिबिया का मसाला छिल गया । मुस्कराकर शैक ने कहा—ओह, डैम्प (सील गई)। चौथी दियासलाई ही जल सकी । शैक ने भी अपने फेफड़ों से शक्ति भर धुआं और मिला दिया । बिस्तर में पहनने के चौड़ी धारी वाले कपड़े पहने उस का शरीर कम्बलों से बाहर निकल आया । समीप कुरसी पर बैठ दृष्टि खिड़की से बाहर लगाये वह धुएं के बादल छोड़ता

चला जा रहा था, सहसा तल्लीताल की ओर से सूर्य की तिर्छी किरणें लुड़कते हुये बादलों को बेंधती हुयी झील की ढलमल सतह को छू गयीं और फिर एक क्षण में लोप हो गयीं। शैंक के मुख से निकल गया स्प्लेंडिड (वाह, क्या नज़ारा है) !

शैंक स्वगत बातचीत करते समय भी अंग्रेजी में ही बोलता था यानि वह सोचता भी अंग्रेजी में ही था। आईने के सामने विशेष प्रयत्न से नेकटाई की गांठ ठीक से बांध कर उस का मन समर्थन करता—'O.K. कहीं चलने का समय हो जाने पर वह अपने आप को सचेत करता—'टाइम टू बी मूविंग' (चल पड़ना चाहिये) और कभी परेशानी अनुभव कर वह बड़बड़ा देता—'बोरिंग !'

लड़कपन में होश संभालने और मनुष्य बनने का स्वप्न देखते ही उस ने अंग्रेजी और अंग्रेज़ की बोली को शक्ति तथा आदर का प्रतिनिधि और समानार्थक देखा था। बचपन में शिक्षा अलिफ बे की तख्ती से शुरू जरूर हुई परन्तु अंग्रेजी याद कर सकने लायक आयु होते ही उस ने अंग्रेजी पढ़नी शुरू की। उस के मुख से अंग्रेजी का कोई शब्द सुन होनहार बेटे के भविष्य की कल्पना से पिता शेख मुश्ताक अहमद और उस की माता के चेहरे पर मुस्कराहट आ जाती। गरीब और पददलित काले आदमियों के विराट समूह में पैदा हो विद्या, बुद्धि और भाग्य के बल मुनव्वर के साहब बनने का प्रयत्न जारी रहा।

मुनव्वर के पिता शेख मुश्ताक अहमद, लड़के के भविष्य का ख्याल कर अपने इलाके से गुजरने वाले तमाम साहब लोगों को सलाम बजा लाते। अवसर होने पर साहब लोगों के हाथ की चिट्ठी का उतना ही मूल्य था जितना किसी दस्तावेज का। इस ज़माने में साहब लोगों की सिफ़ारिशी चिट्ठी उतनी सुगमता से नहीं मिल पाती और न उस का वह प्रभाव ही रह गया है। उन के वालिद यानि मुनव्वर के दादा के

ज़माने में साहब लोगों की सनद ही सब से बड़ी बरक्कत और सलाम सब से बड़ा हुनर था। यहां तक कि वे कभी अपने गांव के समीप रेल के स्टेशन पर जाते तो गाड़ी आने के समय तक प्रतीक्षा कर 'गार्ड साहब' और 'डिलेवर साहब' को सलाम करके लौटते।

शेख मुश्ताक अहमद के समय में सलाम और सनद दोनों की ही बरक्कत कम हो गई। यह बेकद्री देख उन्होंने कहना शुरू किया—"अब असली खानदानी नुत्फे के साहब लोग विलायत से आते ही नहीं। वालिद के जमाने में कलक्टर साहब लोगों का डेरा चलता था तो दस-दस घोड़े सवारी के साथ रहते। जिस के सलाम से खुश हो गये, कह दिया—वेल यह गांव टुम को जागीर में दिया और अब क्या है, टुच्चे गोरे विलायत से आते हैं। दरखास्त पर दरखास्त दिये जाओ, कुछ सुनाई नहीं। जैसे हरवाहे, किसान काश्तकार वैसे ही जमींदार, ताल्लुकेदार। मल्का के वक्त की बात ही और थी। जब से काला आदमी अफ़सर होने लगा है, इन्साफ रह ही नहीं गया। इन्साफ़ है अंग्रेज के हाथ में। अंग्रेज न हो तो काले आदमी एक दूसरे को फाड़-फाड़ कर खा जायं। गोरे आदमी के सम्मुख झुकना, उसे सलाम करना, मियां शेख मुश्ताक हुसेन को स्वाभाविक जान पड़ता था परन्तु काले आदमी का साहब के अधिकार और अभिमान से अकड़ कर चलाना और उस के सम्मुख झुकना उन्हें विडम्बना जान पड़ती थी।

मुनव्वर की धारणा दूसरी थी। उस के जीवन की महत्वाकांक्षा काले आदमी के स्वाभाविक दैन्य की निराशा स्वीकार न करती। वह स्वयं साहब बनने का स्वप्न देखता था। उस के फूफा का भतीजा पल्टन में डाक्टर बन कर साहब हो गया था। दूसरा एक फुफेरा भाई जंगलात के महकमे में एस० डी० ओ० अफसर बन कर बिलकुल साहबी ढग से रहता था। परिचितों और बिरादरी में भी कितने ही लोग अंग्रेजी पढ़, सरकारी

नौकरी पा अंग्रेजी बोल, अंग्रेजी ढंग से रहते थे। इन सब लोगों के साहबियत के तौर-तरीके और सामान देख मुनव्वर स्वयं साहब बनने के मधुर स्वप्न में खो जाता।

इसी स्वप्न को चरितार्थ करने के लिये वह साहबियत की विद्या अंग्रेजी अनेक रूप में एम० ए० तक—साहित्य, गणित, इतिहास और विज्ञान के माध्यम से वह अंग्रेजी ही पढ़ता रहा। कालेज में पढ़ते समय ही उस ने साहबी ढंग अपना लिया। दादा और पिता की तराशी मूछों और लम्बी दाढ़ी की जगह सेफ्टीरेज़र से सफ़ाचट चेहरा चमकने लगा। बुजुर्गों की उस्तरे से घुटी चांद की जगह उस के सिर पर उतार-चढ़ाव से कटे घुंघराले बाल संवारे रहते। कुरते-पायजामे की जगह कमीज़-पतलून। नेचे और हुक्के की जगह साफ़-सुथरा हल्का-सा सिगरेट होठों की हरकत के साथ हिलता रहता। यह साहबियत की अदा थी, नज़ाकत और मर्दानगी लिये हुये।

काले आदमियों से कूड़े-करकट के काले ढेर पर साहबियत की शिक्षा और महत्वाकांक्षा की बरसात पड़ने से जैसे कुछ कुकुरमुत्ते उठ आते हैं, वैसे ही रूप-रंग में अपनी परिस्थितियों से मिल कर भी, अपनी महत्वाकांक्षा में मुनव्वर ने अपनी कोठरी को रूम (कमरा) बना लिया। मुनव्वर अहमद की जगह वह एम० एहमड बन गया। खान्दान का पुराना पद मियां छोड़ उस ने मिस्टर कहलाना आरम्भ किया और अंग्रेजी में शेख के स्पेलिंग (हिज्जे) बदल वह शैक बन गया।

अत्यन्त परिश्रम से प्राप्त की साहबी ढंग से साहबी बोली बोल सकने की योग्यता और अपने खान्दान के लिहाज और प्रभाव के कारण शैक को मातहत अफ़सर (Sudordinate Officer's Grade) की नौकरी मिल गई। तनख्वाह सवा-सौ रुपया थी परन्तु साहबियत के ढंग और तर्ज से रहने में खर्च अधिक था। बारोज़गार होकर भी वह कर्जों से दबा

रहता और घर के सम्मुख याचक था परन्तु समाज के सम्मुख सधा हुआ सुथरा साहब होने की तपस्या जारी थी। ऊंचे दर्जे के साहब लोगों की बैठक और क्लब तक भी पहुंच न हो पाई परन्तु काले आदमियों के जिस प्रवाह से वह कड़ी तपस्या से ऊपर उठ सकता था, गिर कर उस में मिल जाने के लिये भी वह तैयार न था। वह साहबों के समाज के स्वर्ग और काले आदमियों के नरक के बीच त्रिशंकु की भांति लटका हुआ था। उस की दृष्टि निरन्तर तरक्की द्वारा ऊंची साहबियत पाने की ओर लगी हुई थी। युद्ध के दौरान में ज़रूरत के कारण काले आदमियों के लिये बन्द साहबियत के अनेक ओहदे के द्वार खुल गये। ऐसे ही ओहदे पर वह भी फिसल जाये, इसी आशा और प्रयत्न में वह दो सप्ताह की छुट्टी ले नैनीताल आया था और फिर गरमी में नैनीताल न जा सकना भी तो साहबियत में कलंक समझा जाता है।

नैनीताल में उस ने अपनी कल्पना का स्वर्ग पाया। लखनऊ में वह साहबियत के सब सलीकों के बावजूद केवल सेक्रेटेरियट का क्लर्क था। नैनीताल में एक परिचित के यहां ठहर, अपने सब से कीमती सूट पहन, पन्द्रह दिन में तीन सौ रुपये खर्च कर, क्लेरियो में चाय पी कैपिटल के नाच में किसी गौरांग युवती के साथ नाच और मैट्रोपोल में लंच खा कर वह साहब के अस्तित्व को पूर्णता अनुभव कर सकता था और काले आदमी की छाप, चाहे कुछ समय के लिए ही सही, उस से दूर हो सकती थी।

अपने इस स्वप्न को शैक ने नैनीताल में चरितार्थ भी किया। पाउडर की सुवास और ताजगी लिए गौरांग एंगलो-इण्डियन युवती को बगल में ले, काले आदमियों से खींची जाती रिक्शा पर बैठ, गर्व से सिर ऊंचा कर साहब लोगों के बीच वह मालरोड पर धड़धड़ाता निकल गया। मैट्रोपोल से वह काले आदमियों के कंधों पर झूलती डांडी में सिगरेट पीता हुआ, काले आदमियों के बाज़ार मल्लीताल और तल्लीताल में से गुजरा। जब

वह कैपिटल में नाच के समय पेग पर पेग मांग रहा था, काला आदमी खानसामा, सफेद चोगा पहने कमर और पगड़ी पर पेटी लगाये, उसकी पलकों के संकेत पर नाच रहा था। उस समय वह इन काले आदमियों की बाढ़ में, काली लहरों के परस्पर संघर्ष से पैदा हो गई लहरों के सिर पर नाचती श्वेत झाग की भांति अपनी नशे से मतवाली कल्पना में थिरक रहा था।

रात को हलकी फुहार में अब गोरी मेम का हाथ चूमकर, सिगरेट से धुआं उड़ाते हुये वह काले कुलियों के कंधों पर डांडी में लद अपने स्थान पर लौटा, उस के मेज़बान उस की प्रतीक्षा में अभी तक जाग रहे थे। एक तार उन के हाथ में था। शैक के नाम तार था, उस के छोटे भाई का। दुगुनी फीस दे अर्जेण्ट तार दिया गया था। छः लाइन के तार में जीवन की महत्वाकांक्षा पूरी होने के संक्षिप्त समाचार से शैक का शरीर एक स्पन्दन से सिहर उठा। स्वयं उस के और परिवार के प्रयत्नों से उस के लिये भरती के महकमे में लेफ्टिनेंट के ओहदे की मंजूरी की खबर थी और उस का सोमवार सुबह ही लखनऊ में मौजूद होना जरूरी था।

× × ×

जुलाई के पहले सप्ताह में वर्षा आरम्भ हो जाने पर नैनीताल से नीचे जाने वालों का प्रवाह खूब बढ़ जाता है। पैट्रोल की कमी के कारण लारियों की संख्या घट गई और नैनीताल से काठगोदाम पहुंचना कठिन समस्या बन गयी। इज्जतदार लोगों के लिये ऐसी समस्या और भी कठिन होती है। ड्राइवर की बगल में एक ही सीट रहती है, जिस पर बैठने से आदमी साधारण से ऊंचा और भिन्न समझा जा सकता है।

शैक अपना समान ले दो बजे से ही मोटरों के अड्डे पर मौजूद था। अनेक लारियां केवल फौज के गोरों के लिये ही थीं। दूसरी लारियों में
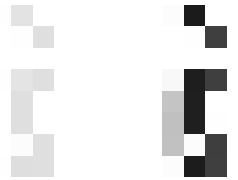
ड्राइवर के साथ की जगह का टिकट पहाड़ की उतराई में चक्कर आने से डरने वाले पहले से खरीद चुके थे। इस इज्जत की जगह के लिये दो घण्टे तक तड़फने के बाद शैंक एक रुपया बारह आने की जगह सात रुपये दे एक कार में काठगोदाम पहुंचा।

काठगोदाम से चलने वाली गाड़ी में तीन-चौथई स्थान पहले और दूसरे दर्जे के मुसाफिरों के लिये फी मुसाफिर सो सकने लायक जगह के हिसाब से, उन के खाने-पीने के लिये अलग गाड़ी के साथ सुरक्षित था। शेष जगह में तीसरे दर्जे के मुसाफिर जो संख्या में पहले और दूसरे दर्जे के मुसाफिरों से सौगुने थे, शहद की मक्खियों की भांति एक के ऊपर एक लद रहे थे।

इस समस्या की ओर शैंक का ध्यान नहीं गया। तीसरे दर्जे में सफर करने वाले आदमियों से उसे सरोकार भी न था। लपक कर टिकट की खिड़की पर पहुंचा—"वन सेकण्ड क्लास प्लीज़!" बटुआ खोल उस ने अधिकार के स्वर में मांग की।

खिड़की के तंग झरोखे से दिखाई दे रही बाबू की मुद्रा स्थिर रही—"सर, देयर्स नो सीट। आल दि बर्थ्स आर सोल्ड (जनाब, कोई जगह शेष नहीं, सब जगह बिक चुकी हैं)।" बाबू ने स्थिर भाव से उत्तर दिया।

शैंक निराशा से चुप रह गया परन्तु अपने को संभाल, बटुए में फिर हाथ डाल और भी अधिक गम्भीर स्वर से उस ने कहा—"आल राइट, फर्स्ट क्लास।"

बाबू अब भी विचलित न हुआ—"फर्स्ट क्लास के टिकट भी समाप्त हो चुके हैं।"

नैनीताल की शीतल कोहरा मिली वायु से सहसा काठगोदाम की गरमी और धूप में आने से शैंक के चेहरे पर पसीने की बूंदें झलक आई थीं। बाबू की तटस्थ मुद्रा और निराशापूर्ण बात से वह बह उठीं। सेकेण्ड

क्लास के टिकट की कीमत तेरह रुपये आठ आने के साथ पांच रुपये का नोट बखशीश के रूप में आगे बढ़ा कर शैक ने दुबारा टिकट के लिये अनुरोध किया। बाबू के स्वर में सौजन्य आ गया—"अफसोस है!" बाबू ने उत्तर दिया, "आधी से अधिक जगह तो फौजी अफसरों के लिये पहले से घिरी रहती है। जगह है ही नहीं। स्टेशन मास्टर का हुक्म टिकिट बेचने का नहीं है। ठीक समझें तो तीसरे दर्जे का टिकिट ले लीजिये वर्ना शायद वह भी न मिले।"

अपमान और परेशानी में शैक तीसरे दर्जे की खिड़की की ओर गया। टिकट वास्तव में नहीं मिल रहा था। भीड़ को चीर कर खिड़की तक पहुंचना सम्भव न था। काले आदमियों के मैले वस्त्रों और पसीने की गन्ध से सांस घुट रही थी लेकिन टिकट लिये बिना और सफर किये बिना चारा न था। अगले दिन सुबह लखनऊ न पहुंचने का अर्थ था जीवन की सफलता की आशा का डूब जाना। हाथ से निकल जाते जीवन के अवलम्ब को पकड़ पाने के लिये शैक दुर्गन्ध से उबकाई पैदा करने वाली उस भीड़ में धंस पड़ा।

अंग्रेजी में बहस कर और टिकट लेकर जब वह बाहर निकला उस की कमीज और पतलून बेलन से निकली ईख की तरह मैली और विरूप हो चुकी थी। मोटर के ड्राइवर तथा क्लीनर और उस में बहुत कम अन्तर रह गया था। गाड़ी अभी प्लेटफार्म पर नहीं लगी थी परन्तु भीड़ और असबाब के जमाव के कारण ठोकर या धक्का खाये बिना दो कदम चल सकना कठिन था।

भोजीपुरा में रात के समय कुली नहीं मिलते इसलिये भोजीपुरा-लखनऊ लाइन के मुसाफिर इस गाड़ी से कट कर सीधी लखनऊ जाने वाली गाड़ी में जुड़ जाने वाले डिब्बों में बैठने के लिये प्लेटफार्म के अगले भाग पर जमा हो रहे थे। प्रत्येक मुसाफिर जानता था—जमा होने वाले

सब मुसाफिरों के लिये गाड़ी में जगह नहीं। जरा-सी-सुस्ती, तनिक-सी शिथिलता के परिणाम में वह गाड़ी से रह जायगा। प्रत्येक मुसाफिर आवश्यक समझता था कि दूसरे से पहले वह गाड़ी में घुसे और अपने स्त्री-बच्चों को भीतर खींच ले। परिणाम में प्रत्येक मुसाफिर एक दूसरे को शत्रु समझ रहा था। हृदय में भरी प्रतिद्वन्द्विता और प्रतिहिंसा से भीड़ सन्ना रही थी।

प्लेटफार्म के पश्चिम की ओर से धक्-धक्, छक-छक करता हुआ इंजन गाड़ी को प्लेटफार्म पर धकेले आ रहा था। गाड़ी रुकने से पहले ही मुसाफिर दरवाजे खुलने की परवाह न कर खिड़कियों से ही गाड़ी के भीतर कूदने लगे।

जब तक शैक पसीने से सराबोर टिकट हाथ में ले लखनऊ जाने वाले डिब्बे के सम्मुख पहुंचे, गाड़ी भर चुकी थी। कुली फर्स्ट और सेकण्ड क्लास के मुसाफिरों के बिस्तर लगा रहे थे और वे मुसाफिर निश्चिन्त भाव से अपने डिब्बे के सामने टहल रहे थे। दृष्टि उस ओर गई। उस ने अनुभव किया, वह स्वयं घोंसले से गिरे हुये पक्षी की भांति असहाय था। लपक कर वह सीधे लखनऊ जाने वाले डिब्बे के सम्मुख पहुंचा। उस के दो सूटकेस और होल्डाल अब भी प्लेटफार्म पर पड़े थे और कुली का पता नहीं। वह शायद फर्स्ट और सेकण्ड क्लास के मुसाफिरों का असबाब चढ़ा रहा था। भरी हुई गाड़ी के दरवाजों से अब भी मुसाफिर चिपक रहे थे।

प्रतिष्ठा और औचित्य का विचार छोड़ शैक अपना सामान उठा खिड़की से भीतर ढकेलने लगा। भीतर बैठे मुसाफिर सामान की राह रोक रहे थे और शैक उसे भीतर ठूंस रहा था। दोनों ओर से हाथों और शब्दों की शक्ति का भी उपयोग हो रहा था। शैक की धमकी बेकार हो रही थी। भीतर भीड़ में पिसते किसी मुसाफिर ने सिफारिश की—"अरे
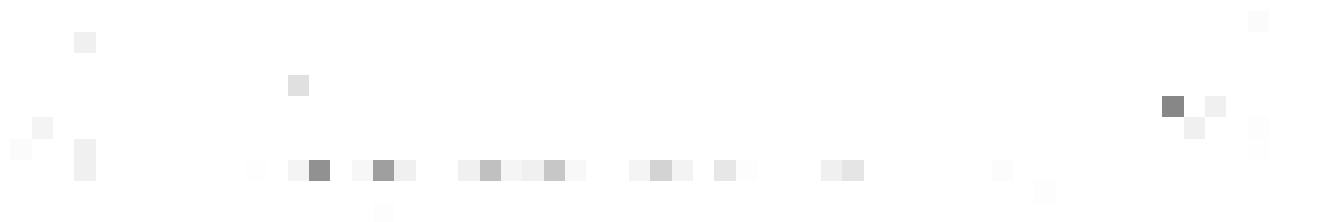
भाई, आने दो ! किसी तरह मिल-जुल कर मुसीबत का वक्त काटना है ।"

शैक का सामना भीतर थाम लिया गया । वह दरवाजे की राह पिस पड़ा । पीछे से आने वाले धक्के ने उसे किसी तरह भीतर पहुंचा दिया । इस समय काले आदमियों के शरीर की दुर्गन्ध और मैल की ओर उस का ध्यान न गया । भीतर धंस पाने के मल्ल युद्ध से उस के फेफड़े धौंकनी की भांति चल रहे थे । खूब सट कर चौबीस आदमियों के बैठने की जगह में ढेरों असबाब और चालीस आदमी भर चुके थे । शैक किसी तरह एक पांव गाड़ी के फर्श पर और दूसरा अपने सूटकेस पर रखे, ऊपर असबाब रखने की जगह थामे खड़ा था । अब भी गाड़ी के भीतर धंसने का यत्न करने वाले और ढेरों असबाब लिये गाड़ी में चढ़ पाने के लिये, व्याकुलता से छटपटाते मुसाफिर प्लेटफार्म पर मौजूद थे ।

बन्द गले का सफेद कोट-पतलून पहने, हाथ में टिकट काटने की मशीन लिये एक टिकट बाबू आया । उन के पीछे ऊंचे और चौड़े डील का एक अंग्रेज मुंह में दबाये पाइप से धुआं छोड़ता खड़ा था । टिकट बाबू ने गाड़ी के मुसाफिरों को बाहर निकाल साहब के खानसामे और बैरे के लिये जगह करने का हुक्म दिया । मुसाफिर सहम गये । तीन-चार बहुत ही निरीह मुसाफिर टिकट बाबू के हाथ थाम कर नीचे खींचने से अपनी गठरी-मुठरी छाती से चिपकाये, कातर आंखों से देखते गाड़ी से उतर गये । साहब लोगों के खानसामे और बैरे अपना असबाब गाड़ी में ढकेल भीतर चढ़ने लगे । फर्स्ट और सेकण्ड क्लास में आराम से बैठे साहब लोगों के अर्दलियों और नौकरों का उन के साथ पहुंचना जरूरी था । छः अर्दली, खानसामे अपने बाल-बच्चों समेत आ पहुंचे । शैक को अपना असबाब हटा कर जगह करने के लिये कहा गया । यह बात शैक के सहन की सीमा को लांघ गई ।

"क्या दूसरे मुसाफिरों ने टिकट नहीं खरीदे हैं ?" तैश में शैक ने

इन्तजाम करने वाले बाबू को उत्तर दिया।

"टिकट का कोई सवाल नहीं" उसे उत्तर मिला, "टिकट साहब के नौकरों ने भी तो खरीदे हैं। इन के लिये जगह की जरूरत नहीं है ?"

जगह न खाली करने की हालत में शैक को गाड़ी से उतार दिये जाने की धमकी दी गई। उस के अड़ जाने पर साहब के नौकरों ने ही उस का सामान एक तरफ हटा दिया। उस के देखते दूसरे मुसाफिरों को खड़ा कर साहब लोगों के छः नौकरों के लिये बैठने की जगह कर दी गई। बरे और अर्दली लोग बैठ कर काले आदमियों के भेड़, बकरी की तरह गाड़ी में भर आने की शिकायत करने लगे।

शैक बिधा बैठा था। उसे जान पड़ा—जैसे यह लांछन उस पर पर लगाया जा रहा हो—"और तुम खुद क्या हो ?" गुस्से में उस ने एक अर्दली से घूर कर पूछा।

"हैं क्या ?" अर्दली ने उत्तर दिया, "यही तो काले आदमी की आदत है कि एक दूसरे को देख नहीं सकता। दूसरे को देख कर जलता है। काले आदमी में एका बिलकुल नहीं। इनसाफ है तो साहब लोगों में !"

एक के बाद दूसरा बैरा और अर्दली अपने साहब के रोब और उदारता का बखान करने लगा। दूसरे मुसाफिरों के लिये इस का चाहे जो अर्थ रहा हो, शैक इसे व्यक्तिगत आक्षेप समझ रहा था। उस के लिये इस का अर्थ था—तुम काले आदमी हो, तुम साहब बन कर भी साहब की बराबरी नहीं कर सकते।

स्थान की तंगी के कारण एक साहब के बैरे का एक सफेदपोश सज्जन से जो तंग जगह में किसी तरह सिमिट कर बैठा था, जगह के बारे में झगड़ा हो गया। इस अन्याय के विरोध में चुप रहना शैक के लिये सम्भव न रहा। उस ने बैरे को डांट दिया। बात हिन्दुस्तानी में शुरू कर अंग्रेजी में बोलने लगा। अंग्रेज की खिदमत करने वाला बैरा काले आदमी की

डांट बरदाश्त करने के लिये तैयार न था। अधिक कुछ सुने और समझ बिना ही उस ने जवाब दिया—"बड़े आये अंग्रेज़ी बोल कर साहब बनने वाले ! पतलून पहन कर दो लफ्ज़ अंग्रेज़ी क्या सीख ली, साहब बन गये। ऐसे बीसियों देखे हैं हम ने देहरी पर सिर रगड़ते !"

बैरे की इस गाली से शैंक का खून उबल उठा। यह गाली उस के व्यक्तित्व को न थी। परिस्थितियों के कारण वह अपने व्यक्तित्व को एक ओर रख चुका था। वह गाली थी उस की नस्ल को, जिस से छूटने, बच पाने या भाग जाने का उपाय न था। गाली दे रहा था एक कमीना काला आदमी। बौखला कर शैंक बैरे पर हाथ छोड़ बैठा। लोगों के बीचबचाव के लिये आ पड़ने पर भी वह सीना उभारे और घूंसा ताने कहता चला गया—"जा, अपने साहब को बुला ला ! साहब के जूते क्या उठाने लगा है, साहब का भी बाप बन गया है !" गाड़ी में सन्नाटा छा गया और फिर धीरे-धीरे फुसफुसाहट से बैरों की गुस्ताखी की आलोचना होने लगी।

हलद्वानी स्टेशन पर गाड़ी थमते ही बैरा अपने साहब के यहां दुहाई देने पहुंचा। स्टेशन से गाड़ी छूटने को ही थी कि एक स्टेशन बाबू बैरे के साथ दो कान्स्टेबल लेकर आये और शैंक को हिरासत में ले गाड़ी से उतर आने को कहा। बैरे के साहब अब भी दस कदम पीछे खड़े शान्ति से अपने पाइप से धुआं उड़ा रहे थे।

क्रोध से आंखें लाल किये, मुंह से कुछ बोले बिना शैंक अपनी आस्तीन की बाहें चढ़ाता असबाब सहित गाड़ी से उतर आया। सुबह लखनऊ पहुंच नयी नौकरी पर हाजिर होने का ध्यान उसे न रहा।

× × ×

दारोगा साहब रपट का रजिस्टर फर्श पर पटक बिगड़ रहे थे—"जब रपट लिखाने वाला फरियादी ही नहीं तो हम लिखें क्या तुम्हारा सिर ?"

शैंक का रूप, रंग और ढंग देख दारोगा साहब ने उसे बैठने के लिये

कुर्सी दी और एक गिलास पानी और डिबिया से पान पेश किया। स्वयं दो बीड़े पान मुंह में दबाते हुये दारोगा साहब ने पूछा—"आखिर आप पढ़े-लिखे शरीफ आदमी, उस कमीने के मुंह लगे क्यों कर ?"

सान्त्वना पा शैक ने कहा—"क्या अर्ज करूं जनाब ! काला आदमी कह कर गाली दे रहा था।"

शैक को हिरासत में लेने वाला कान्टेबल सामने खड़ा था। दारोगा साहब का रुख देख उस ने कहा—"और सारा आपुन खुद तवे का सा काला रहा ! ···ओ कौन अंग्रेज रहा ! बहुत होय, देशी किरस्टान रहा होय !"

उगालदान में पीक छो, बुजुर्गियत के अधिकार से दारोगा साहब ने फर्माया—"अरे भाई, इसी को तो कहते है जवानी बावली होती है। आप को काला आदमी कहा था तो सुन लेते ! आखिर कौम और नस्ल से हम लोग काले ही हैं। आप काले हैं, हम काले हैं और वह भी साला काला। उस साले को अपनी नौकरी से मतलब, हमें अपनी रोटी-दाल से मतलब। आप खयाल कीजिये अपनी रोज़ी का। वल्लाह काले आदमी की गाली से चिढ़ने लगें तो हो चुका। जो सब की गाली, वह किसी की गाली नहीं। अपनी-अपनी जगह कोई अपने को काला आदमी नहीं मानता और एक में मिल कर सभी काले, सो उस में क्या ?"

दारोगा साहब के समर्थन में सिर हिला कर कान्स्टेबल ने कहा—"ठीक तो कहते हैं हुजूर और क्या ? कोई अपने को गाली दे, ससुर का सिर फोड़ दें ! काले आदमी की क्या गाली ?···उई तो जात ठहरी। उई से कौन इनकारी है ?"

शैक पर जैसे घड़ों पानी पड गया। वह क्या उत्तर देता ? लेफ्टीनेन्ट के ओहदे की नौकरी क्या यों ही हाथ से गई···इन्हीं काले आदमियों के कारण ?···यह जात का कालापन कैसे धुले ?

◈

समाधि की धूल

"इन के बारे में तो सुना था—बड़े भले आदमी हैं, बहुत पढ़े-लिखे हैं, अमृतसर के किसी कारखाने में मैनेजर हैं। सुसराल का ध्यान कर घबराहट होती थी। सुना था—बज्र दिहात है, पहाड़ में व्यास नदी के किनारे रेल तो क्या, नदी पार मोटर-लारी भी नहीं जाती, निराले रीति-रिवाज़ हैं।

"बिदाई में छोटे भैया ससुराल तक साथ गये थे। बेर-बेर पूछते जाते—जल या खाने को कुछ चाहिये ? गरमी तो नहीं लग रही ? कुछ और जरूरत हो तो कहो ? ओढ़नियों और फुलकारियों की तहों में यों लिपटी थी कि किसी तरह सांस भर ही आ रही थी। लज्जा के मारे बोल भी न पाती। सिर हिलाकर रह जाती।

"नदी के किनारे मोटर लारी रुकी। नाउन ने उलझ गये कपड़ों को सुलझाया। कन्धे को सहारा दे, लारी से उतार पालकी में बैठा दिया। नदी पर नाव, नाव पर पालकी और पालकी पर मैं, ऐसे नदी पार कर कुछ दूर गये। बरात के साथ बाजे बज रहे थे। सामने दूर से भी बाजों का स्वर सुनाई दिया। बरात के साथ के बाजों का स्वर और ऊंचा हो गया। समझा पहुंच गये।

"हमारे स्वागत में बाजे सुसराल के द्वार पर बज रहे थे। यों तो

जो होना था, हो चुका था। मैं अब इसी घर की वस्तु थी परन्तु द्वार पर पहुंचे तो कनपटियों से पसीने की धारें एड़ी तक बहने लगीं। हृदय की गति बढ़ी गयी। बाजों की तुमुल ध्वनि, पटाखों और बन्दूकों का शब्द, मंगलाचरण गाती स्त्रियों के कण्ठ का सम्मिलित, अस्पष्ट परन्तु ऊंचा स्वर, पुरुषों की झुंझलाहट, चिंता और हुकूमत भरी आवाजें, विराट समारोह का गोलमाल हो रहा था। मेरे छोटे से हृदय में मेरा संसार बदल रहा था। कभी से मैं इस दिन की प्रतीक्षा और तैयारी कर रही थी। वह सब तैयारी व्यर्थ रही, हृदय आतंक से बैठा जा रहा थ, सिर में चक्कर आने लगा।

"गीत गाती स्त्रियों के गिरोह ने पालकी को घेर लिया। पर्दा उठा, बांह थाम मुझे बाहर आने का संकेत किया गया। कांपते पैरों से मैं द्वार की ओर सरकने लगी। कुछ गोलमाल-सा सुनाई दिया। स्त्रियों का गाना रुक गया ?

"पहले समाधि पूजी जायगी।···इधर चलो न !···भूल गये। हां-हां चलो !" मेरे कन्धे थामे स्त्रियों ने मुझे घुमा दिया।

"गोलमाल में भैया का उत्तेजित स्वर सुनाई दिया—यह सब मसान-मढ़ैया पूजने के खुराफात नहीं होंगे। क्या तमाशा हो रहा है ?

"उत्तेजित स्वर में उत्तर मिलने लगे—यह तुम्हारा घर नहीं है। हमारे रीति-रिवाज कैसे नहीं होंगे ?

"किसी ने शान्ति से समझाया—भाई पीर-मसान की पूजा नहीं है। गांव का ऐतिहासिक स्थान है। नये ब्याहे लड़के-लड़की के लिये आशीर्वाद की कामना से ऐसा किया जाता है। इस में हर्ज की कोई बात नहीं है—मन में आया, भैया व्यर्थ में झंझट कर रहे हैं। जब मुझे दे ही डाला तो अब उन का अधिकार ही क्या ? स्त्रियों का गिरोह चलने लगा। उस के बीच कंधों से थाम कर मुझे चलाया जा रहा था।

"कुछ लड़के-लड़कियां उत्साह से भागते हुये आगे-आगे चल रहे थे। स्त्रियों ने हथेलियों पर जल के लोटे और पूजा के सामान की थालियां ली हुई थीं। मेरे आंचल के छोर में 'इन' के दुपट्टे के छोर की गांठ बांधी गयी। 'ये' भी चल रहे थे। स्त्रियां बेमेल तीखे स्वर में गाती जा रही थीं। स्त्रियों की किलकिलाहट और बच्चों की चीखों के बीच समाधि की आरती उतारी गई। हम दोनों ने समाधि पर माथा टेका। लौट कर द्वार-चार और दूसरी रीतियां बहुत देर तक होती रहीं।

"सिमटी बैठी थी। दिन भर की थकावट से शरीर जकड़ सा रहा था। आंखें नींद से भारी थीं परन्तु मुंद न पातीं जैसे उन में तिनके अड़े हों। सब से उत्कट क्षण अभी आने को था।

"बिना आहट किये आ वे मेरे समीप पलंग पर बैठ गये। मैं और सिमिट गई। कुछ सोच कर उन्हों ने पूछा—रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई ? चुप रही। स्वयं ही कहने लगे—इस सफर से थकावट बहुत हो जाती है। आराम से लेट जाओ न ! लज्जा से मेरा सिर झुक गया।

"कुछ और सोच कर बोले—समाधि की पूजा से भैया को बुरा लगा पर उस में ऐसी कोई बात नहीं है। कोई पीर मसान नहीं है। लोग उसे प्रेमियों की समाधि या 'बल्लू-चमेली की समाधि' कहते हैं। यहां इस समाधि की बड़ी मानता और महत्व है। यह पत्थर की पूजा नहीं, भाव की आराधना है।

"तकिया बगल में ले वे करवट से हो गये—आराम से बैठो—उन्हों ने आग्रह किया परन्तु मैं लजा कर वैसे ही सिमटी रही।

"सुनाने लगे—

"यह बल्लू-चमेली की समाधि बजती है।

"यहां से दस कोस ऊपर पहाड़ में एक गांव है 'पतिया'। बल्लू उसी गांव के गूजर रद्दू का बेटा था। भला-सा जवान। गरीब मां-बाप का
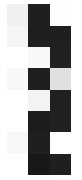
बेटा। चीड़ के पेड़ों की घाटी में पतिया है, उस पर रेहड़ में डामू की बस्ती है। डामू के राधे साह का बड़ा नाम था। तीस-चालीस कोस में उन की हवेली की धूम है। चमेली राधे साह की बेटी थी; ओस में भीगी, सुन्दर, निर्मल और सुगन्ध से भरपूर चमेली की कली।

"बल्लू अपने गांव और डामू के गोरू चराता था। एक रोज उस ने बीच की घाटी की बावली पर चमेली को देखा। देखा चाहे पहले भी हो पर किसी क्षण का देखा कुछ और ही हो जाता है। हो सकता है, किसी पिछले जन्म के संस्कार जाग उठे हों। बल्लू चमेली के पीछे हो लिया।

"पास-पड़ोस में चर्चा होने लगी। चमेली का घर से निकलना बन्द हो गया। बल्लू अपने गोरू छोड़ दिन-रात डामू की बस्ती की परिक्रमा करने लगा। दोपहर की वायु से सांय-सांय करती चीड़ों के नीचे घटा-टोप अंधेरी, काली रात में डामू के नीचे सुनसान और मूसलाधार वर्षा में, किसी भी समय चमेली को टेरती बल्लू की बांसुरी की तान सुनाई दे जाती।

"राधे साह अपना अपमान समझ गूजर के लड़के पर बहुत बिगड़े। रद्दू के छप्पर में आग लगवा दी। उन के आदमी लट्ठ लिये बल्लू को मारने के लिये फिरते रहते। कहते हैं—वे बल्लू के गोरू को घेर कर बैठ जाते और वह प्रेम का देवता उन्हें प्रेम की बंशी सुनाता। एक दिन राधे साह के नौकर ने बल्लू पर लट्ठ उठाया। बल्लू खड़ा हंसता रहा। डामू के ही एक सांड़ ने नौकर को उठाकर चट्टान पर दे मारा। उस की दो पसलियां टूट गईं।

"चमेली पर कड़ा पहरा था; कभी हवेली के आंगन से निकलने न पाये। राधे साह ने लड़की की सगाई भिजवा गांव के मिट्ठू साह के लड़के से कर दी। प्रेमी के मन की आह लगी। लड़के को सांप डस गया।

"यहां से चार कोस ऊपर, नदी किनारे 'जलेश्वर' का स्थान है। बैसाखी के दिन जलेश्वर के पूजन का बड़ा महात्म और पुण्य है। वहां बैसाखी का बड़ा भारी मेला लगता है। दूर-दूर से बिसाती, हलवाई और तमाशे वाले आते हैं। झूले पड़ते हैं, रहट लगते हैं। दस-पन्द्रह कोस के भीतर कोई ऐसा आदमी नहीं जो इस मेले में न आता हो।

"मेले में राधे साह लड़की को ले पूजन कर मनौती मनाने आये। बल्लू की तो सूरत ही चमेली में लगी थी। उस के हृदय से कैसे छिप सकता था। अदृश्य तार से बंधा वह भी नंगे पांव से चट्टानों पर लहू टपकाता, बंशी बजाता मेले में पहुंचा।

"चमेली पूजन के लिये नये कपड़े पहिन कर आयी थी। काली सूफ की तंग सुत्थन (पायजामा), गुलाबी कुरता और पीली ओढ़नी में गोटा टंका हुआ। मां, भावजों और सहेलियों से घिरी वह बिसाती के यहां टिकुली, बुन्दे खरीद रही थी। बल्लू की दृष्टि उस पर पड़ी और पुकार बैठा—चमेली!

"मां, भावजें और सहेलियां चमेली को दूसरी ओर ले गयीं। बल्लू पालतू कुत्ते की भांति उन के पीछे-पीछे चला। स्त्रियों ने उसे गालियां दीं। बल्लू चुप रहा परन्तु चमेली को एक बेर देख पीछा न छोड़ा।

"धर्म-स्थान का मेला ठहरा। सब भले घरों की बहू-बेटियां वहां पूजन के लिये आती हैं। ऐसा अनाचार वहां कैसे सहा जाय? लोग जमा हो गये। बल्लू को डांट-फटकार और नसीहत करने लगे। बल्लू के मन में प्रेम का आनन्द समा गया था। वह खड़ा गाली, लानत और फटकार सुन मुस्कराता रहा। केवल चमेली को उस ने अपनी आंखों से ओट न होने दिया।

"चमेली की मां और सहेलियां उसे ले शिवपूजन के लिये मन्दिर में गई। वह बावला भी मन्दिर के भीतर धंसने लगा। प्रेम भगवान के

सच्चे पुजारी के लिये ही भगवान के चरणों में स्थान न था। उसे धक्के दे बाहर निकाल दिया गया। वह उठा और फिर भीतर चला। राधे साह ने अपने गांव के लोगों को पुकारा। बल्लू पर लात-घूंसे और पत्थर पड़ने लगे। उस के माथे का खून एड़ी तक बह गया। चमेली को देख पाने के लिये मन्दिर में घुसने के प्रयत्न से वह न हटा।

"मन्दिर के भीतर कोने में खड़ी सहेलियों से घिरी चमेली यह देख रही थी। कहते हैं—उस युग में हर के लिये सती ने तपस्या की थी। उसी का बदला हर, बल्लू के रूप में तपस्या कर दे रहे थे। सती चमेली से न रहा गया। आंसू बहाते हुये अपनी मां की बगल से आकर उस ने कहा—इतना ही मेरा प्यार है तो नदी में जाकर डूब मर!...क्या मेरी जग-हंसाई करा रहा है?

"ऊपर पहाड़ी से गिरती-पड़ती व्यास जलेश्वर में आती है। जल तीर जैसा तेज और बरफ जैसा ठण्डा। नदी बड़ी-बड़ी और पैनी चट्टानों से भरी है। नदी की धार इन चट्टानों से टकराती है तो बांसों ऊंची फुहारें उठती रहती हैं। नदी का पाट फेन से भरा रहता है। मनुष्य तो क्या; यदि समूचे वृक्ष का कुन्दा भी उस में गिर जाय तो छिपटियां उड़ जांय।

"चमेली की बात सुन बल्लू जैसे क्षण भर को सहम गया। फिर नदी की ओर मुंह कर दौड़ पड़ा। सब लोगों के देखते-देखते वह नदी में कूद पड़ा।

सभी लोगों की भौंचक दृष्टि उसी ओर थी कि जैसे हवा में बिजली कौंद गई। बल्लू के कदमों पर चमेली दौड़ती दिखाई दी। उतनी ही तेज और उस से भी अधिक उतावली। कोई कुछ समझ या बोल सके, इस के पहले ही वह भी नदी के उमड़ते फेन में कूद पड़ी।

"विस्मय-स्तब्ध बेबस लोगों की पंक्तियां नदी किनारे खड़ी थीं पर कोई क्या कर सकता था?

"प्रेम की महिमा···! अगले दिन लोगों ने देखा—यहां एक चट्टान पर एक-दूसरे की बांहों में लिपटे; दोनों के शरीर रखे हैं। भक्ति-भाव से उठा लोगों ने उन्हें सद्‌गति करने के लिये चिता दी परन्तु उन की तो सद्‌गति पहले ही हो चुकी थी। यहीं उन की समाधि बनाई गई। अब जलेश्वर के पूजन के साथ इस समाधि की पूजा होती है। ब्याह के पश्चात, द्वार-प्रवेश से पहले नयी आई बहू के साथ वर 'प्रेमियों की समाधि' की पूजा करता है। लोगों का विश्वास है, इस से उन में कभी प्रेम-क्षय नहीं होता। जिन घरों में कलह रहती है, वहां लोग समाधि की धूल ले जाकर रख लेते हैं। इस से पति-पत्नी की कलह दूर हो जाती है।

"अलौकिक प्रेमियों से सतत् प्रेम का वरदान पाने के लिये ही वह पूजा की गई थी।

"सांस रोके मैं सुन रही थी। प्रतिक्षण उन के स्वर से बढ़ता परिचय उन के स्वर के माधुर्य को बढ़ाता जा रहा था। बात समाप्त हो जाने पर हृदय से एक गहरा निश्वास उठा और मेरा सिर प्रेम के माधुर्य की स्मृति और नवीन अनुराग से झुक गया।

"मेरा श्वास रुकने लगा—अक्षय और सतत् प्रेम का वरदान पा, अनुराग की प्रथम घड़ी में ही प्रेमी को धोखा दे जीवन को कैसे विषाक्त कर दूं ? सिर झुकाये चुप रह गई। आंसू छलक आये। और भी तरल अनुरोध से उन्हों ने बांह मेरी पीठ पर रख दोहराया—बोलो !

"होंठ काट आंसुओं का घूंट भर उत्तर दिया—प्रेम करना सीखा था।

× × ×

"कितनी ही बार समाधि पर अनन्त श्रद्धा-प्रार्थना कर, समाधि की धूल ला घर के कोने-कोने में रख चुकी हूं···पर उस धूल को उन के हृदय में कैसे रख पाऊं ?···"

◈

रोटी का मोल

रामगोपाल छुट्टनजी माधोमल की आढ़त की कोठी में मुनीम है। वे दिन कुछ और ही थे। आढ़त की कोठी का गरिमामय, गम्भीर वातावरण चिंतापूर्ण निष्क्रियता, आशंका और उत्तेजना में बदल गया। जाहिर कारोबार एक तरह से चौपट था। कई महीने चढ़ा-चढ़ी और तेजी की ले दे रही। फिर अचानक कण्ट्रोल की अफवाह सच्ची हो गई। जैसे मदरसे में छोटी जमात के लड़के मास्टर साहब की गैरहाजिरी में खूब मार-पीट और धमा-चौकड़ी मचा रहे हों, अचानक मास्टर साहब आकर मेज पर बेंत फटकार दें, लड़के आशंका से सन्नाटा खींच जायं लेकिन दिल में गुब्बार भरा रहे; उत्तेजना उमड़ती रहे, ठीक यही हाल बाजार का था।

लालाजी मसनद के सहारे बैठे उंगलियां चटखाते जाने क्या-क्या सोचा करते थे? कभी बड़े मुनीम हरलाल को संकेत से बुला कान में कुछ बातचीत कर लेते। फोन की घण्टी भी लगातार टन-टन नहीं करती। दलालों का अंगोछे की आड़ में लालाजी और हरलाल के हाथ की उंगलियां थाम-थाम भाव के लिये झगड़ना अब न होता। कोठी की कल-कल, कांय-कांय बन्द हो गई। कहार पानी के डोल और पान के बीड़े लाने से परेशान नहीं होता। फोन पर भाव नहीं पुकारे जाते। इतना ही इशारा

होता—कहो तो फिर आवें ! कोई दलाल आता तो अधूरी-अधूरी बातें होतीं । इन आशंकित स्वरों और अधूरी बातों में और भी अधिक उत्तेजना रहती ।

रामगोपाल अपनी जगह पर बैठा गरदन उचका देता । खातों में बीजक चढ़ते रहने पर भी उस के कान उस ओर खिंच जाते । वह कोठी में सब से छोटा मुनीम था । बहुत-सी बातें उसे मालूम न थीं परन्तु शंकित और उत्तेजित होने लायक बहुत कुछ वह जानता भी था । वह जानता था, भदेरिया और गौरी में सेठजी ने हाल में तीस-तीस हजार मन गेहूं और चना भरा है । मुनीम हरपाल के साथ वह भी वहां गया था । कानपुर में भी अपने कई कोठे हैं । कण्ट्रोल की वजह से ऐसा जान पड़ता मानो कोठी की सम्पत्ति पर शत्रुओं का आक्रमण हो रहा है । लाला जी और मुनीम लोग शत्रुओं से घिर कर जी-जान से मुकाबिले के लिये तैयार हैं ।

मंझले मुनीम किसनलाल की आदत थी, सुरती मलते-मलते कोई न कोई चटपटी बात शुरू कर देते । वे कोठी के सम्वाददाता थे । बड़े मुनीम हरलाल बाज़ वक्त उन्हें 'नारद महाराज' कह कर मज़ाक भी कर देते । किसनलाल कभी चमनगंज में किसी हिन्दू औरत के मुसलमानों द्वारा इक्के पर भगा लिये जाने की कहानी, कभी 'तिलक हाल' में कांग्रेस की और कभी 'हटिया' में कांग्रेस के वालंटियरों पर लाठी-चार्ज होने की खबर सुना देते । इन बातों का चर्चा किसनलाल के सुरती मलते रहने तक ही रह पाता ।

कारोबार की कोठी में राजनीति के पचड़े का क्या स्थान ? ये बातें हैं, अवारा और बेकारों की पर अब किसनलाल 'कन्ट्रोल और राशनिंग' की खबर सुनते तो लम्बी बहस छिड़ जाती । सेठ जी भी बोलने लगते—कण्ट्रोल से क्या हो जायगा ? अरे भाई, व्यापारी ने दाम लगाये हैं, वह दाम निकालेगा नहीं ? कोई अन्धेर है क्या ?···कहीं जबरन भाव लगते

हैं ? बस नहीं है हमारे पास…है ही नहीं। जाओ ! लाला हाथ की उंगलियां हवा में नचा कर कहते—उन्हें कोई नफा-नुकसान भरना है ? अफसरों की अपनी हजारों रुपये की तनख्वाहें खरी हैं। गवर्मेण्ट मन चाहे भाव खरीद सकती है…व्यापारी ऐसे थोड़े ही कर सकता है ? उसे तो बाज़ार-भाव खरीदना, बाज़ार-भाव बेचना। उसे दाम नहीं मिलेंगे, माल बाज़ार में लायेगा क्यों ? पड़ा रहने दो साले को ! जिसे लेना होगा दाम देगा।"

हरलाल गाली देकर बोल उठते "…गवर्मेण्ट क्या खाकर बेच लेगी ? लेगी कहां से ? माल तो है व्यापारी के हाथ, भाव लगायेगी गवर्मेण्ट ? …ऐसा कभी हुआ है ?…सरकार पहले अपना पेट तो भर ले ? करोड़ों मन तो फौज का खर्चा है। कोई अपना पेट काट कर दे क्या ? बाज़ार में माल ही कहां जो गवर्मेण्ट खरीद लेगी ?"

किसनलाल बोल उठते—"गांव-गांव सरकारी खरीद होने की खबर है।"

हरलाल उचक उठते—"तुम्हीं न जाओ गांव से खरीद लाओ ? अरे जेठ में तो किसान चादर झाड़ बैठता है। यहां पूस-माघ में सरकार गांव से गल्ला खरीदेगी ?"

किसनलाल और छेड़ देते—"गल्ले की जब्ती की भी तो उड़ रही है !"

सेठजी तैश में आ जाते, "जब्ती न हो गई, मज़ाक हो गया। गल्ले की जब्ती गर्वमेण्ट करेगी ? पहले बजाजे की करे। कपड़े का भाव नही चढ़ा है क्या ? हर-एक के पांच-पांच हो रहे हैं ? बिसात का माल नहीं चढ़ा क्या ? करे, गवर्मेण्ट जब्ती करे !"

"ऐसा कही हो सकता है ?" हरलाल समाधान करने लगते, "गवर्मेण्ट ऐसा कहीं कर सकती है ? तब तो दुनियां ही पलट जाय। व्यापारी के
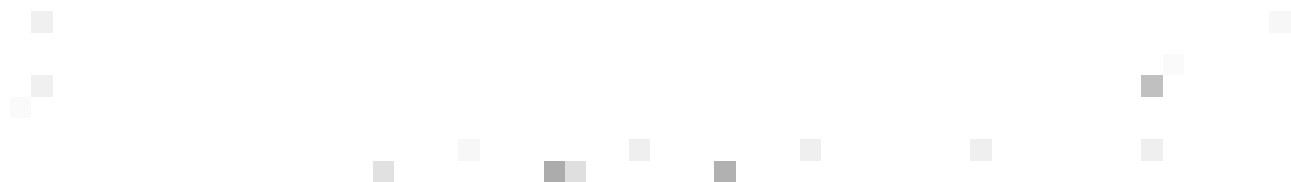
माल की जब्ती करेगी तो टिक्कस कहां से लेगी गवर्मेण्ट ? गवर्मेण्ट का काम जान-माल की हिफ़ाजत करना है…ऐसा होने लगे तो हुकूमत चल चुकी। यह सब बड़ी-बड़ी मिलें हैं…ये मुनाफा नहीं ले रहीं क्या ?…सब को सरकार जब्त कर सकती है ?…करे ! अन्धेर मच जाय…!" अन्याय के प्रतिकार के लिये वे उत्तेजित हो उठते।

रामगोपाल गरदन ऊंची कर सुनता रहता। वह स्वयं भी उत्तेजित हो उठता—बेचारे गल्ले और आढ़त के व्यारियों पर सरकार कितना जुल्म कर रही है। कभी सेठ जी कोई कोठा-खत्ती बेच डालते तो खरीद के भाव से वर्तमान भाव की तुलना कर वह मन ही मन उत्साहित हो उठता।

कण्ट्रोल का पहला प्रभाव मिट गया। बाजार प्रकट नहीं, गुप्त रूप से चल रहा था और फिर तेजी आ रही थी। गेहूं बारह रुपया मन हुआ और अभी प्रतिदिन पैसा-दो पैसा चढ़ रहा था। दूसरे मुनीमों और रामगोपाल का माहवार खर्च महंगाई की वजह से बढ़ गया था। पहले केवल बीस रुपये महीने उसे मिलते थे अब सेठ जी ने छब्बीस रुपये कर दिये। बीस के छब्बीस हुये पर हाल पहले से भी बुरा था। तब साढ़े तीन-चार का आटा महीने में निबटता न था, अब वह बात चौदह-पन्द्रह में नहीं हो पाती। सभी चीजों के दाम गल्ले की तरह, बल्कि उस से कहीं ऊंचे थे। यह सब संकट झेल कर भी दुकान में बैठते समय तेजी की खबर से रामगोपाल को स्फूर्तिमय उत्तेजना होती। कहीं उस के पास भी इस समय रकम होती···एक कोठा कहीं उस ने भी ले लिया होता; बीस-पच्चीस हजार बन गये होते ! वह नहीं हो सका। फिर भी तेजी से कौतूहल और स्फूर्ति होती ही थी—वैसे ही जैसे भयंकर बाढ़ का पानी गांव की गलियों में चढ़ता देख गांव के बच्चे नया खेल आया समझ पुलकित होने लगते हैं।

× × ×

रामगोपाल गुड़मुड़ी मारे रजाई में लिपटा पड़ा था। नींद टूट जाने पर भी जाड़ा-सा मालूम दे रहा था। मन चाह रहा था तमाम रजाई अपने शरीर पर अच्छी तरह से लपेट ले परन्तु पीठ पीछे सोये भानू के उघड़ जाने के भय से निश्चल सिमटा पड़ा रहा था—उठते तो पर जाड़ा है। पिछले बरस वह जल्दी ही उठ जाता था। बिन्ध्या कुल्ला करने के लिये उसे जल का लोटा दे चूल्हा सुलगा देती। वह बच्चों के लिये टिकिया सेकती और रामगोपाल जरा आंच ताप लेता। कोठरी में ईंधन का सोंधा-सोंधा धुआं भर जाने से जाड़ा मालूम न देता। सुबह-सुबह रोटी बन जाती। गरम-गरम खा वह नौ बजे जाकर कोठी खुलवाता। अब सुबह आंच नहीं जल पाती। जले कैसे ? मन ही मन उस ने गाली दी—ईंधन···रुपये का चार पसेरी मिल रहा है—ईंधन न हुआ चन्दन हो गया। उपलों को क्या आग लगी है, पैसे के दो। यह भी क्या जंग पर जा रहे हैं ? आटा रुपये का तीन सेर, पूरा पड़े तो कैसे ?

रामगोपाल सुबह लैया-चने चबा दुकान चला जाता। बच्चे भी वही चबा लेते या मां उन के लिये सांझ को शकरकन्द भून कर रख लेती। दोपहर बाद खूब अबेर से तीन-चार बजे खाना होता। दोनों जून का एक ही बेर में निबट जाता। व्यक्ति घर में जैसे भी निबाह ले पर बाहर दुनिया में आबरू रखना जरूरी है। कोई कुली-कहार तो हैं नहीं, उघाड़े फिरें। कोठी में मुनीम है। जाड़े के लिये उस ने मोटे सूती चारखाने कपड़े का कोट सिला लिया।

बिन्ध्या को सर्दी से खांसी आने लगती है। सोचा था, चारखाने कपड़े का एक सलूका उस के लिये भी हो जाता। गुंजाइश न थी, सो हो नहीं सका पर कलख रामगोपाल के दिल में बनी थी।

समीप ही दूसरी खाट पर मुनिया को लिये बिन्ध्या सो रही थी। घर में एक ही रजाई थी, बिन्ध्या के दहेज की। बिन्ध्या रजाई उसी की

खटिया पर रख देती। वह स्वयं एक सूती कम्बल में पुरानी लोई जोड़, मुनिया को सीने से चिपटा, रात काट देती। रामगोपाल सोचता, जाड़ा तो उसे भी लगता होगा पर करे क्या? जब-तब ख्याल आ जाता और वह मन ही मन रिंधने लगता। इस समय भी रजाई में सिकुड़े ही ख्याल आ रहा था।

जान पड़ा गली में कोई पुकार रहा था—"भैया रामगोपाल! ए मुनीम जी! भैया रामगोपाल हो!"

लच्छी की आवाज थी। किवाड़ों पर खट-खट भी सुनाई दी।

रामगोपाल ने उत्तर दिया—"कौन है; लच्छी है क्या?" और पांव में उलझती लांग सम्भाल, किवाड़ खोल पूछा, "क्या है लच्छी?"

धीमे स्वर में लच्छी ने कहा—"सेठ जी हवेली पर बुला रहे हैं। बड़े मुनीम जी और किसनलाल भी हैं। सब लोग आधी रात से हैं। बड़ा जरूरी काम है भैया! तुरत आ जाओ! ···समझे!"

"आते हैं।" बेबसी से रामगोपाल ने उत्तर दिया।

आहट से बिन्ध्या की भी आंख खुल गई। अपने शरीर का कपड़ा लड़की को ओढ़ाते हुये उस ने कहा—"हाय, हाय, किवाड़ तो बन्द कर लड़की को हवा लग जायगी। उसे पहले ही से सर्दी हो रही है।"

रामगोपाल ने किवाड़ बन्द करते हुये कहा—"जल दो, कुल्ला कर लें। सेठ जी ने बुला भेजा है।"

बिन्ध्या उठी। खाट के नीचे कटोरे से ढकी लुटिया पांव लग जाने से लुढ़क गई और कटोरी से कठोर झनकार गूंज उठी। उस के स्वर से रामगोपाल के शरीर में शीत से खड़ी हो रही रोम-राशि और भी सतर्क हो गई। वह भन्ना उठा—"अन्धी हो क्या?"

करुण स्वर में बिन्ध्या ने विरोध किया—"सुबह-सुबह कैसे बोल बोलते हो! अब अंधेरा है तो क्या करूं? लड़के को दो दिन तो तेल के

लिये भेजा। भीड़ में उल्टे मार खा कर चला आया। नहीं मिला तो क्या दिये में अपना सिर दे दूं ?"

रामगोपाल जल का लोटा ले आंगन में निकल गया। लौटा तो छोटी लड़की गुड़ के लिये जिद्द कर रही थी। उसे सुना बिन्ध्या ने कहा—"अब सुबह-सुबह कहां रखा है गुड़ ! कौन ले आता है मिठाई तेरे लिये जो रख दूं सामने !"

रामगोपाल समझ रहा था, उसी पर ताना है पर उत्तर न दिया। कमीज पर रुई की पुरानी बण्डी पहिनी, ऊपर से सूती कोट के बटन बन्द किये और चलने को हुआ। बिन्ध्या ने अंगोछा बढ़ा कर कहा—"चून निबट गया है, ले आओगे तो आज को होगा।"

सेठ जी की हवेली की ड्योढ़ी लांघ रामगोपाल बैठक में पहुंचा ही था कि शिकायत के स्वर में मुनीम हरलाल ने स्वागत किया—"वाह पण्डित, अच्छे रहे ! अब आ रहे हो ? तुम्हारे भरोसे रहते तो जाने क्या हो जाता !"

सेठजी शाल ओढ़े मसनद के सहारे बैठे थे। नींद भरी लाल चिन्तित आंखें एक बार उन्होंने रामगोपाल की ओर उठा दीं। इतना ही उस के लिये पर्याप्त था।

रामगोपाल की उपेक्षा कर सेठ जी बड़े मुनीम और किसनलाल से बात करते रहे। हरलाल आयु के कारण पीली पड़ गई आंखों में अनिद्रा की लाली लिये सफेद मूंछों पर हाथ फेरते हुये कह रहे थे—"बड़ी मुश्किल से गोविन्द जी को राजी कर पाये भैया ! हाशिम भाई तो टाले दे रहे थे। हम ने कही, चोखेलाल की खत्तियों की बात फैल गई तो बाजार तीन-चार आने की मद्दी से खुलेगा···सब के दिये जल जायंगे।" फिर बोले, "···भाई, जो गोबिन्द जी कहें अपना भी समझ लो !"

किसनलाल घुटनों के बल बैठ, चादर कंधों पर लपेटते हुये बोले—

"चले थे बेटा खत्ती भरने, कमसरियट की सप्लाई के जोर पर। लाख मन चावल 'कण्डम' हो गया। इतने में दम निकल गया।...व्यापारी के गज भर का सीना होना चाहिये। बेटा औरों को भी ले डूबते।"

"गोबिन्द जी भी नाम तो इतना है" हरलाल कहने लगे, "पर दिल कुछ नहीं है।...चोखेलाल की बात सुनी तो लगे हाथ-पैर फूलने और फिर बोले, "खिलवा के हाते की खत्ती हम नहीं लेंगे। सुना है दो साल पुरानी है...घुन रही है।"

सेठजी ने आशंकाभरी दृष्टि हरलाल की ओर उठा कर पूछा—"तो क्या बिलकुल...?"

हाथ बढ़ा कर हरलाल ने उत्तर दिया—"अजी नहीं, और हुआ भी तो क्या; दो हजार मन ?...एक खत्ती गई भी तो क्या ? बाजार में हल्ला हो जाता तो ? दस-बीस हजार मन का क्या पता चलता है इतने में। रुपये में पाई-आधी-पाई...।"

दीर्घ निःश्वास से आसन बदल सेठजी बोले—"तो फिर मुनीम जी, कहारों को भेज कर ताले बदलवा दो न ! हां, जरा उस कोठे को भी देख लेना...!"

रामगोपाल ने समझा—चोखेलाल अढ़ाई लाख मन चावल की सप्लाई कमसरियट में कर रहे थे। कमसरियट के पेमेण्ट के जोर पर लाला ने बहत्तर कोठे खत्ती का भाव पूरा का कर लिया था। हुण्डी तरने की तारीख आ गई और कमसरियट ने चावल 'कण्डम' कर दिया। सत्तर अस्सी हजार मन गेहूं कोई चीज होती है। बाजार से गल्ला निकल जाने के कारण भाव चढ़ रहा था। इतना गल्ला एकदम आ जाने से भाव गिरता नहीं तो क्या ?...रामगोपाल के मन में चोखेलाल के प्रति ग्लानि-सी भर गई ! सेठजी का ही दिल है, हाशिमभाई और गोबिन्द जी को मिला कर सब समेट लिया।

लच्छी और जमना कहारों से ताले उठवा रामगोपाल-चोखेलाल के कोठों पर अपने ताले गिरवाने चल दिये। चमनगंज, प्रेमनगर, एलनगंज और लाईन पार अहातों में घूम-घूम कर ताले बदलवाते दो बज गये। रामगोपाल के घुटनों तक और चेहरे पर धूल चढ़ रही थी। सूती कोट से भी पसीना छलकने लगा। चाबियों का गुच्छा कांख में दबाये वह नयागंज से लौट रहा था।

बाज़ार में पच्चीस-तीस आदमियों की एक टोली लाल कपड़े पर सफेद हंसिये-हथौड़े का झण्डा लिये और बांस की खपच्चियों पर लगे गत्ते के टुकड़ों पर—'मुनाफा-खोरी बन्द करो! गल्ला-चोरी बन्द करो!' लिखे, घूंसे उठा-उठा बावलों की तरह खुराफात चिल्ला रहे थे, 'मुनाफा-खोरों का गल्ला जब्त करो...मुकम्मिल राशनिंग हो...?"

भीड़ में इस हुल्लड़ से रामगोपाल को राह नहीं मिल पा रही थी। परेशानी से उस ने कहा—साले कहीं के चोर बदमाश...मुनाफा बन्द करो! मन ही मन उसे चिढ़-सी उठी—मुनाफा बन्द हो जाय तो दुनिया कैसे चले?

एक गली के मुहाने पर खड़े हो टोली के एक आदमी ने कन्धे से लटका बिगुल बजा दिया और कनस्तर पर खड़े हो दायें हाथ का घूंसा उठा लेक्चर देने लगा—"भाइयो, हम लोगों का गल्ला कहां गया? गल्ला पैदा करने वाले किसान भी दाने-दाने को तरस रहे हैं। तमाम गल्ला मुनाफ़ाखोरों ने समेट लिया। जब हमारे बच्चे भूखे मर रहे हैं, यह लोग लाखों-करोड़ मन गल्ला कोठियों और खत्तियों में भर हमें भूख से तड़पा रहे हैं। इनका मुनाफा कौम की मौत के मोल है। सब गल्ला जब्त होकर गरीबों को ठीक भाव से मिलना चाहिये! भाइयो, मुहल्ले-मुहल्ले गल्ला कमेटियां बनाओ। सरकार पर जोर डालो कि गल्ला आप की कमेटियों की मारफत ठीक भाव पर बिके!"

एक ओर जगह देख रामगोपाल आगे निकल गया। मुनाफाखोरी के खिलाफ लेक्चर अब भी चल रहा था। उस के मन में हुआ कि हाथ में चाबियों का भारी गुच्छा उठा, लेक्चर देने वाले को अंगूठा दिखा दे—ले-ले गल्ला !

रामगोपाल ने सोचा कि दूकान पर चाबी देने जायगा तो और देर होगी; पहले एक रुपये का आटा घर दे आये। एक दूकान पर जाकर भाव पूछा। बनिये ने बताया, पौने तीन सेर। रामगोपाल को धक्का-सा लगा—"क्या जुल्म करते हो लाला ?" उसने अधीर स्वर में पूछा, "एक ही दिन में पाव भर घटा दिया ?"

हाथ फैला, बेबसी दिखाते हुये लाला ने उत्तर दिया—"भैया, जिस भाव पाते हैं। बाजार में गल्ला है ही नहीं। कहां से लायें ?"

चाबियों के बोझ को दूसरे हाथ में बदलते हुये रामगोपाल ने साहस किया—"काहे, कण्ट्रोल की दूकान पर तो चार सेर का बिक रहा है ?"

"होगा भैया, बिकता होगा।" पीछा छुड़ने के ढंग से लाला ने उत्तर दिया, "अपने को कण्ट्रोल का भाव मिलता नहीं···देख लो ! यहां है ही कहां ? यह चुटकी भर रखा है। चौके में यों ही निबट जायगा।

ओंठ काटते हुये रामगोपाल ने सोचा, वह जरूर कण्ट्रोल की दूकान पर जायगा। सवा सेर का फरक कम नहीं होता !···साले बेईमान कहीं के ! दूकान पर चाबियां उस ने बड़े मुनीमजी के सामने रख दीं। खाते से आंख उठा उन्हों ने पूछा—"सब देख-जोख लिया है न ठीक से ?··· घर नहीं गये क्या ? झपट के हो आओ ? फिर तनिक हाशिम भाई के यहां काम है। तुरतै आ जाओ !"

भूख और मानसिक क्षोभ के कारण रामगोपाल चुप रह गया। मसनद के सहारे बैठे सेटजी ने उस की ओर देख कर कहा—"अब कहां जाओगे ?" फिर हरलाल को सम्बोधन किया, "कहार से कह कर पूड़ी

न मंगा दो !" पूड़ी के नाम से रामगोपाल के मुख में पानी आया ही चाहता था कि दिमाग में सुबह से भूखे जगन, मुनिया और बिन्ध्या की याद उठ आई। कुछ कह न सका। मुनीम जी ने सिफारिश की—"नहीं घर हो आने दो, सुबह का निकला है।"

पुराने पम्पशू के तल्ले को फटफटाते रामगोपाल कलट्टरगंज की ओर चल दिया। कण्ट्रोल की दूकान अभी बन्द थी। हिन्दी-उर्दू के मोटे-मोटे अक्षरों में एक तख्ती पर लिखा था—गेहूं रुपये का चार सेर। सामने सैकड़ों की भीड़ थी। कुछ लोग दूकान से बिलकुल सट कर बैठे थे। कुछ लोग बोरी या चादर का टुकड़ा लिये भीड़ के चारों ओर टहल कर प्रतीक्षा कर रहे थे। मैले से चदरे का टुकड़ा कांख में दबाये, भीड़ से बच कर खड़े, अपने ही जैसे अपेक्षाकृत एक भलेमानुष को सम्बोधन कर रामगोपाल ने पूछा—"दूकान खुली नहीं अभी ?"

समीप खड़े दूसरे आदमी ने उत्तर दिया—"अभी कहां, साढ़े चार बजे हवलदार साहब आ कर खुलवायंगे।" भीड़ की ओर संकेत कर गाली दे उस ने कहा, "सब साले भुक्खड़ कहीं के ! मार-पीट करने लगते हैं। देखो तो, ससुर दिन चढ़े से आ बैठे हैं।"

भीड़ के किनारे बैठे एक जर्जर, पिंजर-मात्र शरीर बूढ़े ने आवाज ऊंची कर उत्तर दिया—"बैठे नहीं तो क्या ?···कल हम दोपहर में आये और हमारे बाद आये लोग हमें ढकेलकर लेकर चले गये। हमें मिला ही नहीं। पांच-पांच जने खाने वाले हैं। आज हमें किसी साले ने धक्का दिया तो हम ईंट मार साले का सिर फोड़ देंगे। चाहे फांसी हो जाय; और क्या ?"

उस का उत्तर देने दस-पांच खड़े हो गये—"बड़े आये सिर फोड़ने वाले। देखें किस के सीने पर बाल हैं ? हम सुबह से बैठे हैं। हम सबसे पहले लेंगे !"

भीड़ में दबी एक बुढ़िया ने दोनों हाथ उठा कर कहा—"अरे भैया हम सब से पहले आये थे। देखो, धक्के देकर हमें कहां हटा दिया और सब लोग आगे हो गये। हमारे इत्ते-इत्ते बच्चे हैं, कल के भूखे ! हमें कोई दिला दो, हवलदार ! हुजूर के बच्चे जीते रहें।"

बावेला सा मच गया। किसी ने पुकारा—"देख लो हवलदार साहब अभी से ये लोग दंगा कर रहे हैं ! हम कह देते हैं हां !"

दूसरी ओर से हाथ भर का डण्डा उठा, चिल्लाकर हवलदार साहब ने ललकारा—"ऐसे किसी को नहीं मिलेगा। चलो, सब लोग लैन डोरी करो !"

रामगोपाल के समीप खड़े, अपेक्षाकृत भलेमानुस दिखाई देने वाले आदमी ने कहा—'कल लड़के को भेजा था। लौंडा खाली हाथ लौट आया। आज आधी दिहाड़ी बिगाड़ कर आये थे सो यहां कुछ मिलता दिखाई नहीं देता। इस से तो भैया पौने तीन सेर का भला; दिहाड़ी तो कर लेते हैं। अपने तो चल दिये।"

उस के सुर में सुर मिला दूसरे आदमी ने समर्थन किया—"कुल पांच बोरी तो गल्ला आता है, यहां पांच सौ मुण्ड जुड़े हैं।" रामगोपाल भी लौट चला और एक गली के मोड़ पर बिना बहस किये एक रुपये का आटा अंगोछे में बांध घर देने गया।

बिन्ध्या कोठरी के दरवाजे से गली में आंख लगाये, रोती हुई मुनिया को गोद में लिये समझा रही थी—"चाचा अभी आयंगे, बाजार से चून लायंगे, दाल लायंगे, गुड़ लायेंगे; सकरकन्दी लायंगे।" उस की आंखों से उद्विग्नता और बेबसी बरस रही थी। रामगोपाल के हाथ से आटे की गांठ ले लड़की को एक ओर छोड़, वह थाली में आटा मांड़ने लगी। रामगोपाल मुंह से कुछ न बोल, दीवार के साथ पड़े चटाई पर बैठ कर नजर गली की ओर किये रहा।

चूल्हे से दाल की बटुई उतार बिन्ध्या ने एक ओर टिका दी और बुझी हुई लड़कियों को फूंक कर प्रज्ज्वलित किया। रोटी तवे से उतरने से पहले ही मुनिया आ बैठी। कटोरी में कलछी भर दाल का पानी डाल, बिन्ध्या रोटी मुनिया के हाथ में दे रही थी कि गली में लट्टू खेलना छोड़ भानू दौड़ा आया—"हम लेंगे। मुनिया पहले दाल पी चुकी है हां, हम पहले···।"

बिन्ध्या ने रोटी के दो टुकड़े कर लड़के-लड़की को बांट दिये और रामगोपाल की ओर देख कर बोली—"तुम भी थाली उठा लो, यह हो गई रोटी। सुबह से जल का घूंट भी गले से नहीं उतरा।"

रामगोपाल की आंखों के सामने अब भी बनिये की वह सूरत नाच रही थी—पौने तीन सेर···तो क्या दे दें भैया? जैसा पाते हैं, बेच देते हैं, बाजार में है ही नहीं और तब स्वयं उस के ही हाथ में हजारों मन की चाबी थी।··· फिर कण्ट्रोल को दूकान के सामने की भीड़!

सेठ जी उसे पूड़ी खिलाने को तैयार थे पर घर पर उस के बच्चे और उन की मां?···आग लगे ऐसी पूड़ी को···अपने बच्चों को, इतने लोगों को भूखा छोड़ कर पूड़ी···।

और तब नयागंज में लाल झण्डा उठाये—'मुनाफाखोरी हराम है' चिल्लाने वाले उस की आंखों के सामने फिरने लगे। अब उन्हें मन में गाली देकर अंगूठा दिखाने की बात नहीं सोची। कनस्तर पर खड़े होकर लेक्चर देने वाले की बात याद कर एक गहरा निःश्वास छोड़ उस ने कहा, अरे सुनता कौन है, सब अपने-अपने मरे जा रहे हैं। उसे ऐसा जान पड़ने लगा—जैसे वह अपने बच्चों की भूख की याद से पूड़ी ठुकरा कर चला आया, वैसे ही वे लाल झण्डे वाले सब गरीब लोगों की फिक्र कर रहे हैं···पर सुनता कौन है?

बिन्ध्या ने थाली में पतली दाल छोड़ एक गरम रोटी रख दी।

लुटिया से हाथ धो रामगोपाल गस्सा तोड़ने को ही था कि बिन्ध्या ने पूछ लिया—"क्या भाव मिला चून ?"

रामगोपाल को फिर पौने-तीन सेर देने वाले बनिया की याद आ गई—कहां से लाये, बाजार में है ही नहीं···और इस समय उस के अपने हाथ में ही हजारों मन की चाबियों का गुच्छा था। उस ने मन में गाली दी बाजार तो ससुर भरा पड़ा है चोर कहीं के दबाये बैठे हैं और समझ आया कि इस सब के परिणाम में ही कण्ट्रोल की दूकान के आगे की भीड़ है। उसे जान पड़ा—यह है उस की रोटी का मोल ?

आंखें कुछ डबडबा-सी गईं इसलिये बिन्ध्या की ओर से फेर लीं। सोचता रहा—इस मोल रोटी पाते हैं, नहीं तो यह भी जाये। रोटी पा सकने के लिये ही अपनी रोटी से हाथ धो रहा है···घुनने के लिये अनाज खत्तियों में भर रहा है।

छलिया नारी

"आस निरास भई···" लय से गुनगुनाते रहना और आहें भर कर जीवन का दुख प्रकट करना नन्दो को नहीं आता था। दुख को रोचक और प्रभावोत्पादक रूप में प्रकट करना वह नहीं जानती थी। रसोई में बैठी घुटने पर सिर टेके या कोई दूसरा काम करते समय वह गहरी उदासी से सोचती रहती···हाय, कैसे कटेगी ? उस के प्रत्येक दिन का आरम्भ निराशा के अंधकूप में एक और सीढ़ी उतर कर होता था।

और पांच मास पूर्व ? उस का जीवन उत्साह से वैसे ही बुलबुला रहा था जैसे नदी की पतली, क्षीण परन्तु सजीव धारा अपने स्रोत पर बुलबुलाती है। वे बातें किसी से कहने की न थीं परन्तु हृदय में तो सब कुछ था। जब और लोगों की तरह संसार में उस ने जन्म लिया है तो उन्हीं की तरह पुलक और उत्साह से भरे जीवन के मार्ग में उस के लिये स्थान क्यों न होगा ? जीवन के इस मार्ग पर पांव रखने से मन में उमंग क्यों न उठती ? कल्पना क्यों न जागती ?

नन्दो को जन्म दे देने से पहले उस के मां-बाप ने उस से कोई राय न ली थी तो जीवन के मार्ग पर उसे चला देने के लिये ही उस की राय की क्या जरूरत थी ? नन्दो का जीवन उस के मां-बाप के जीवन का अंग था। उस से पूछे बिना उसे जन्म दे, पाल-पोस जब उन्हों ने इतना

बड़ा कर दिया तो आगे भी वे सब कुछ कर सकते थे और कर ही तो रहे थे।

शरीर में फूटने वाला जोबन मन में कैसे न फूटे? शरीर में उठते जोबन के चिन्हों को दबाया-छिपाया नहीं जा सकता परन्तु मन में फूटती जोबन की कली को छिपाया और दबाया जा सकता है। वही नन्दो ने भी किया। चुप-चुप वह मन ही मन सोचा करती—गांव की और सब लड़कियों की तरह एक छैला दूल्हा एक दिन उसे भी डोली में बैठा कर सुसराल ले जायगा, जहां वह मेंहदी रचायगी, रंगीन साड़ी पहनेगी और बहुओं के जमघट में मुंह से मुंह मिला, ऊंचे स्वर में सोहर, सावन और लाचारी गायगी। कहीं उस के लिये भी सुसराल का घर है ज़रूर। उसे मालूम नहीं कहां···पर उस के मां-बाप को तो मालूम है।

बिन्दो, सत्तो, राधा, ज्वाला कितनी ही सहेलियों के दूल्हे उस ने देखे थे। गांव की बाट आते-जाते कितने ही जवान और मेले में कितने ही शौकीन बाबू उस की ओर ताकने लगते। उन में से ही कोई न सही परन्तु उन जैसा ही कोई एक छैला उसे एक दिन लिवाने आयगा। यौवन की फटती कली में कल्पना की सुगन्ध उस के मन को मुग्ध कर देती।

फिर गांव में उस के ब्याह की बात भी फैल गई थी। उस से किसी ने न कहा सही परन्तु सुन तो उस ने भी लिया कि 'वह' शहर में बाबू हैं। स्वयं ही उस ने समझ लिया—शहर के सुन्दर सलोने बाबू, आराम से रहने वाले रसिया। वह ऐसा समझती क्यों न? जीवन की सब से बड़ी वस्तु 'पति' की कल्पना सब से सुन्दर क्यों न हो? कद्दावर, सलोना, हंसमुख और रसिया, बोल में मिसरी घुली हुई। अपनी अपनी आशा और कल्पना पर उस ने आंख उठा कर देखने की जरूरत नहीं समझी··· जन्म भर देखना ही था।

पराई चिन्ता करने वाली औरतों के मुंह से अपने पति के रूप-गुण

की बात उस ने जो कुछ सुनी, वह उसे भायी नहीं। ऐसे बकने से क्या होता है, उस ने सोचा। ऐसा कभी हो सकता है ?

सुहागरात आई। विनोदसिंह की बूढ़ी बुआ बहू को कोठरी में बैठा गई। नन्दो समझ गई—जीवन का सब से उत्कट और तीक्ष्ण क्षण आ पहुंचा। जीवन का रहस्यमय द्वार खुलने वाला था। जीवन के देवता और परमेश्वर से साक्षात्कार होने वाला था। खाट की पटिया पर सिर टेके वह फर्श पर बैठी थी। उसके कान, आंखें और रोम-रोम प्रतीक्षा और आशंका से सिहर रहे थे। जान पड़ता था, प्रतीक्षा के वे पल जैसे कभी समाप्त न होंगे पर कदमों की आहट एक दफे सुनाई दे जाने के बाद··· वे पल ऐसे उड़ गये कि सम्भलने का भी अवसर न मिला।

उसी खाट पर उनके आ बैठने से वह ऐसे हिल गई जैसे भूकम्प आ गया हो। थोड़ा खांस कर उनके वे पहले शब्द! ···रोम-रोम जिन्हें सुनने के लिये प्यासा था···अप्रत्याशित से जान पड़े। उनमें मिसरी नहीं घुली थी बल्कि जैसे कुल्हाड़ी का प्रहार आ पड़ा हो।

उन्होंने कहा—"देखो जी, इस घर में अदब, कायदे और पर्दे में रहना होगा, समझी! यह गांव नहीं शहर है।"

सहसा नन्दो की कल्पना बदल गई। वह आशा और कल्पना कर रही थी—उन्माद में आंखें मूंद लेने की। एक ठोकर ने उसकी आंखें खोल उसे स्तब्ध कर दिया।

× × ×

पहली मुलाकात का असर बुरा होता है, रोब उसी दिन जमा लेना चाहिये—बुजुर्गों के अनुभव की यह बात विनोदसिंह सुन चुका था। पहली रात की पहली मुलाकात में ही दृढ़ता से व्यवहार करने का निश्चय उस ने किया था। उसके रिश्ते में सबसे अधिक दबदबा अपनी स्त्री पर

कल्याणसिंह का था। औरत ने मर्द के सामने कभी चूं तक नहीं की थी। कारण था, यही पहली रात की सावधानी।

कल्याणसिंह चतुर आदमी थे। पहली मुलाकात में भी अपनी बुलबुल साथ ले गये। बुलबुल ने शरारत से पर फड़फड़ाने शुरू किये। कल्याणसिंह ने एक धौल बुलबुल की पीठ पर दी। बुलबुल चोंच खोल कर रह गयी। चवन्नी की बुलबुल गई तो क्या, कल्याणसिंह की बहू समझ गई—कितने सख्त आदमी से पाला पड़ा है। उम्र भर उसने चूं नहीं की।

विनोदसिंह से इतना न हो सका पर यह समझा देना जरूरी था कि जोरू के गुलाम बने रहने वालों में वह नहीं है। मन के उद्गार को समेटे परन्तु संक्षिप्त से शरीर को फैला कर वह पलंग पर लेट गया मानो पैताने रखी या बैठी चीज ऐसी नहीं कि उसकी कोई परवाह उसे हो। नन्दो को सबसे पहले परिचय हुआ पति के चरणों से। उसके गालों पर आंसू बह चले। विनोदसिंह ने करवट बदली। खाट के इस दफे हिलने से नन्दो के शरीर में रोमांच नहीं हुआ।

"अच्छा गोड़ दबाओ!" नन्दो को सुनाई पड़ा। संकोच और भय को वह अभी बस न कर पाई थी कि डांट सुनाई दी, "सुनती हो कि नहीं···?"

नन्दो के आंसू विनोदसिंह के पांव पर टपक पड़े। अपनी डांट का सफल प्रभाव देख वह बोला—"यह सब तिरिया-चरित्तर यहां नहीं चलेंगे!···रोने का मतलब?"

खेल छोड़ कंडे पाथने के लिये वैसे मां-बाप ने भी कई दफे डांटा था, मार भी पड़ी थी पर दिल यों कभी न टूटा था। वे हड्डीले, खुरदरे पांव जिनसे जूते के चमड़े की तीखी-तीखी गंध आ रही थी, सूखे कंडों से अधिक सुखदायक स्पर्श उनका न था। नन्दो ने आंखें उठा कर शेष शरीर की ओर देखा भी नहीं; कोई कौतूहल भी उसे न हुआ। उसके आंसू

की बात उस ने जो कुछ सुनी, वह उसे भायी नहीं। ऐसे बकने से क्या होता है, उस ने सोचा। ऐसा कभी हो सकता है ?

सुहागरात आई। विनोदसिंह की बूढ़ी बुआ बहू को कोठरी में बैठा गई। नन्दो समझ गई—जीवन का सब से उत्कट और तीक्ष्ण क्षण आ पहुंचा। जीवन का रहस्यमय द्वार खुलने वाला था। जीवन के देवता और परमेश्वर से साक्षात्कार होने वाला था। खाट की पटिया पर सिर टेके वह फर्श पर बैठी थी। उसके कान, आंखें और रोम-रोम प्रतीक्षा और आशंका से सिहर रहे थे। जान पड़ता था, प्रतीक्षा के वे पल जैसे कभी समाप्त न होंगे पर कदमों की आहट एक दफे सुनाई दे जाने के बाद··· वे पल ऐसे उड़ गये कि सम्भलने का भी अवसर न मिला।

उसी खाट पर उनके आ बैठने से वह ऐसे हिल गई जैसे भूकम्प आ गया हो। थोड़ा खांस कर उनके वे पहले शब्द! ···रोम-रोम जिन्हें सुनने के लिये प्यासा था···अप्रत्याशित से जान पड़े। उनमें मिसरी नहीं घुली थी बल्कि जैसे कुल्हाड़ी का प्रहार आ पड़ा हो।

उन्होंने कहा—"देखो जी, इस घर में अदब, कायदे और पर्दे में रहना होगा, समझी! यह गांव नहीं शहर है।"

सहसा नन्दो की कल्पना बदल गई। वह आशा और कल्पना कर रही थी—उन्माद में आंखें मूंद लेने की। एक ठोकर ने उसकी आंखें खोल उसे स्तब्ध कर दिया।

× × ×

पहली मुलाकात का असर बुरा होता है, रोब उसी दिन जमा लेना चाहिये—बुजुर्गों के अनुभव की यह बात विनोदसिंह सुन चुका था। पहली रात की पहली मुलाकात में ही दृढ़ता से व्यवहार करने का निश्चय उस ने किया था। उसके रिश्ते में सबसे अधिक दबदबा अपनी स्त्री पर

कल्याणसिंह का था। औरत ने मर्द के सामने कभी चूं तक नहीं की थी। का ण था, यही पहली रात की सावधानी।

कल्याणसिंह चतुर आदमी थे। पहली मुलाकात में भी अपनी बुलबुल साथ ले गये। बुलबुल ने शरारत से पर फड़फड़ाने शुरू किये। कल्याणसिंह ने एक धौल बुलबुल की पीठ पर दी। बुलबुल चोंच खोल कर रह गयी। चाहनी कि बुलबुल गई तो क्या, कल्याणसिंह की बहू समझ गई—कितने सख्त आदमी से पाला पड़ा है। उम्र भर उसने चूं नहीं की।

विनोदसिंह से इतना न हो सका पर यह समझा देना जरूरी था कि जोरू के गुलाम बने रहने वालों में वह नहीं है। मन के उद्गार को समेटे परन्तु संक्षिप्त से शरीर को फैला कर वह पलंग पर लेट गया मानो पैताने रखी या बैठी चीज ऐसी नहीं कि उसकी कोई परवाह उसे हो। नन्दो को सबसे पहले परिचय हुआ पति के चरणों से। उसके गालों पर आंसू बह चले। विनोदसिंह ने करवट बदली। खाट के इस दफे हिलने से नन्दो के शरीर में रोमांच नहीं हुआ।

"अच्छा गोड़ दबाओ!" नन्दो को सुनाई पड़ा। संकोच और भय को वह अभी बस न कर पाई थी कि डांट सुनाई दी, "सुनती हो कि नहीं···?"

नन्दो के आंसू विनोदसिंह के पांव पर टपक पड़े। अपनी डांट का सफल प्रभाव देख वह बोला—"यह सब तिरिया-चरित्तर यहां नहीं चलेंगे!···रोने का मतलब?"

खेल छोड़ कंडे पाथने के लिये वैसे मां-बाप ने भी कई दफे डांटा था, मार भी पड़ी थी पर दिल यों कभी न टूटा था। वे हड़ीले, खुरदरे पांव जिनसे जूते के चमड़े की तीखी-तीखी गंध आ रही थी, सूखे कंडों से अधिक सुखदायक स्पर्श उनका न था। नन्दो ने आंखें उठा कर शेष शरीर की ओर देखा भी नहीं; कोई कौतूहल भी उसे न हुआ। उसके आंसू

विनोदसिंह के पांव की अबरी की-सी फटी-फटी त्वचा पर टपकते रहे।

विनोदसिंह के मन में उमंग ने जोर मारा। गला पिघल गया : पुचकारा, "रोओ मत, रोती क्यों हो?" नन्दो की कलाई पर उसका हाथ जा पड़ा। इन हाथों का स्पर्श पांव के स्पर्श से अधिक सरस न था। सुख का स्वप्न समाप्त हो चुका था। आंख मूंद और होंठ काट उसने निश्चय किया—उसे सहना है।

× × ×

जीवन की उठती उमंग, जीवन की समाप्ति से मुक्ति की चाह में बदल चुकी थी। जिस काम के लिये उसे लाया गया था सिर झुका कर उस उपयोग में वह आ रही थी। कल्पना के संसार और वास्तविक जीवन का अंतर एक ही बात में स्पष्ट हो गया—वह आई नहीं थी, उसे लाया गया था। तो फिर उसकी 'इच्छा' कैसी? 'इच्छा' तो है उसे लाने वाले की।

जब दोनों हाथों में मुंह छिपा, घुटने पर सिर टेक वह सोच में डूब जाती, विनोदसिंह का हड़ेला ठिगना शरीर, पक्का सांवला रंग, बड़ी-बड़ी मूंछें और आगे बढ़े हाथ सब लोप होकर उसे केवल दिखाई देने लगता एक गिद्ध! गांव के बाहर के खेतों में सूर्य निकलने से पहले उसने कई बार गिद्धों को निश्चेष्ट शव पर तृप्ति के लिये चोंचें चलाते देखा था। उसे जान पड़ता जैसे उसका इच्छा-रहित शरीर निश्चेष्ट शव है और विनोदसिंह एक गिद्ध।

वह मर ही जाय तो क्या?...जब तक वह जीवित रहेगी यह यातना जीवन में बनी रहेगी...बिना मरे इससे मुक्ति नहीं परन्तु क्या मर जाने के लिये ही वह पैदा हुई थी...बिना कुछ पाये ही...बिना कुछ देखे ही?

आंचल में मुंह छिपा रोने से उसे सान्त्वना मिलती थी पर जी भर

रो पाने की स्वतंत्रता भी उसे न थी। बुआ दिन की नींद से चौंक कर या पड़ोस की गमी-खुशी से लौट कर उसे रोता देख बिगड़ कर गाली देने लगती—"यह क्या कुलच्छन दिहात से लेकर आई है ? किसे रोती है ? रोना है तो अपने पैदा करने वालों को रोये !" नन्दो गले में भरे आंसुओं को हिचक कर पी जाती। एक दिन बुआ भी चली गई। दो दुःखों में आने वाले परिवर्तन का अवसर भी जाता रहा।

× × ×

रात में आराम और सुबह भोजन पा विनोदसिंह दफ्तर चला जाता। इसी काम के लिये वह नन्दो को लाया था। नन्दो रात की यातना और दिन का निरादर लिये निर्विघ्न रोती और रोकर आने वाली संध्या के लिये रसोई और रात के लिये दिल कड़ा करती। वह सोचती—यही जीवन है। आंसुओं की झड़ी में से बिखरी हुई कल्पना की किरणें कभी-कभी इन्द्र-धनुष की भांति झलक उठतीं। बेतुकी बातों की याद आ जाती। मेले में देखे किसी सुडौल नौजवान की गुलाबी आंखें! गांव के कुएं पर उसके लिये जगमोहन का प्रतीक्षा करना। एक दिन उसने कहा था—नन्दो, तुम्हारे लिये शहर से टिकुलिया और चूड़ी लाये हैं, लोगी ?

बांयें हाथ का अंगूठा दिखा उसने उत्तर दिया था—ए हे, बड़े आये लाने वाले ! लाला से कह दूंगी !

राह में लौटते समय वह सोचती आई—बदमाश मुड़चिरा कहीं का पीछे पड़ा है। आज वह सोचती—जगमोहन दिल से उसे कितना चाहता था, चिरौरी करता था। वह अहंकार से झल्ला उठती थी। अब वह कुछ रह ही नहीं गया। एक गहरी सांस सीने से उठ आती।

नन्दो सोचती, वह मर जाय। फिर सोचती—हाय इतनी छोटी-सी उम्र में वह कैसे मर जाय, क्यों मर जाय ? और चली जाय तो कहां ?

…कहीं भी।…उसे सब कुछ सह्य है।…शारीरिक पीड़ा, भूख, सब कुछ परन्तु यों निश्चेष्ट होकर नोचा जाना नहीं।

घर के दरवाजे पर लटकी चिक से गली का जितना भाग दिखाई देता था उससे अधिक संसार उसने देखा न था। जाय तो कहां परन्तु उस अनजाने भयंकर संसार में मृत्यु से अधिक भयंकर तो कुछ नहीं? इस निरन्तर यातना से वह अच्छी। कई दफे उसने निश्चय किया—अपने आपको कसाई के इस काठ से हटा कर संसार के भंवर में डाल दे। दिन भर वह रोने लगती। साहस आंसुओं में बह जाता। फिर वह रात में यातना का शिकार बनती और भाग निकलने का साहस न कर पाने के लिये पछताने लगती।

आखिर एक दिन रात का विचार दृढ़ रखने के लिये, पति के दफ्तर चले जाने के बाद, उसने होंठ दबा आंसू न बहाने का निश्चय कर लिया। रुके हुये आंसुओं की भाफ के जोर से उसके कदम घर से निकल पड़े। सकपकाते कदमों से चलती वह शहर के बाहर नदी के किनारे जा पहुंची। नदी में डूब मरने के लिये नहीं, एक दफे जीवन का उन्मुक्त श्वास स्वतंत्रता से हृदय में भर पाने के लिये।

× × ×

नन्दो के गायब हो जाने की चोट से विनोदसिंह सुन्न रह गया। नन्दो का वियोग था परन्तु उससे अधिक था, स्त्री के भाग जाने का अपमान। क्रोध से उसका मस्तिष्क फट जाना चाहता था। उसके घर से भाग जाने का विचार यदि मालूम हो जाता तो स्त्री भाग जाने के कलंक के बजाय वह उसे कत्ल करने का अपराध ही अपने सिर लेता। ऐसी पापिन दुष्टा से वह भला प्रेम कर सकता था!

दिन बीतते गये। नन्दो के वियोग में दिन, सप्ताह और मास बीतते

जाने पर नन्दो से मिलने वाले सुख विनोदसिंह को याद आने लगे। रसोई में जब आंखों में धुआं भर जाने से आंसू टपकने लगते उसे नन्दो की याद आ जाती। चौमासे की गरमी में जब उमस से नींद न आ पाती तब याद आता, इस समय नन्दो आहिस्ता-आहिस्ता पंखा डुला कर उसे सुला दे सकती थी। पांवों और बदन में एक टीस-सी उठने लगती जिसकी औषध नन्दो के हाथों के स्पर्श में थी।

बदन पर फूली घाम को सहलाते-सहलाते, नींद की प्रतीक्षा में विनोदसिंह सोचने लगता—कुल्टा का कोई लच्छन तो उसमें कभी दिखाई नहीं दिया ?···तो वह चली कैसे गई ?···क्या यहां अकेले घबरा गई ? ··· उसका दिल उदास हो गया।

किसी अप्रत्यक्ष युक्ति से नन्दो के प्रति क्रोध के बजाय करुणा और सहानुभूति की भावना उसके मन में उठने लगी। सोचने लगता···यदि एक दफे कहीं उसे देख पाता तो यत्न से बुला लाता और फिर कभी दुखी न होने देता। नींद न आने पर नन्दो के बिना ऊंची मुंडेरों से घिरी छत उसे भयंकर जान पड़ने लगती। नींद में करवट बदलते समय कोई सहारा न पा नींद उचट जाती। उसका हृदय नन्दो के लिये रो उठता।

ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा, नन्दो के विरह की तीव्रता बढ़ने लगी। उसके अभाव की निरन्तर अनुभूति में नन्दो विनोदसिंह को देवी जान पड़ने लगी। वह उसका पुजारी बन दिन-रात उसकी लौ लगाये रहने लगा। स्वप्न में वह देखता—नन्दो बन की पगडंडी और नदी तट पर बाल खोले सूनी आंखों से भटक रही है···जोगिन भेष बनाये, तन भस्म रमाये।

सूना घर उसे काटने लगा। संध्या समय वह महाबीरजी के मन्दिर की आरती में जा बैठता और कीर्तन समाप्त होने तक वैराग्य के गीत गाता रहता। प्रातः उठ वह नदी स्नान करने चला जाता। नदी के गंदले, बरसाती जल में स्नान करने से उसे शान्ति लाभ होती। मन की शांति

के लिये वह प्रवाह की ओर आंखें लगाये मुख से भगवान का नाम जपता रहता परन्तु आंखों के सामने लहरों पर उसे दिखाई देता—नन्दो का जोगन भेष धरे शांत रूप ।

× × ×

उस सावन की पूनो को नदी स्नान करने वालों की भीड़ अधिक थी। भीड़ से विनोदसिंह को क्या मतलब ? वह नीचे की ओर नदी किनारे अपने ध्यान में मग्न था । अचानक सुनाई पड़ा—"पकड़ो, अरे पकड़ो ! बह गई, बह गई !"

सामने ही विनोदसिंह को गोते खाती एक स्त्री दिखाई दी । नित्य तैरने के अभ्यास के कारण उसने आसानी से स्त्री को जा पकड़ा । स्त्री स्वयं तैरने का यत्न कर रही थी परन्तु नदी के तेज बरसाती प्रवाह में बेबस हो गई थी । सिर के भीगे केशों ने मुख पर लिपट कर उसे अन्धा बना दिया था । आसरा पा वह सम्भल गई । सहारे के लिये अपना एक हाथ उसने बचाने वाले के कंधे पर रख दिया । वे किनारे की ओर मुढ़ने लगे । स्त्री ने दूसरे हाथ से अपने मुख पर फैले बालों को हटाया। उसकी दृष्टि बचाने वाले के मुख पर पड़ी । दोनों की आंखें चार हुईं ।

भय से आर्त एक चिल्लाहट स्त्री के मुख से निकल गई ।

प्राण बचाने वाले का सहारा छोड़, पूरी शक्ति से वह नदी की तेज धार की ओर लपक चली । विनोदसिंह बेबसी में पुकार उठा—"नन्दो !"

परन्तु नन्दो हाथ से निकल चुकी थी । गंदले तीव्र प्रहार में उसके लहराते केशों की एक झलक दिखाई देकर समाप्त हो गई। लहरें उसे निगल गईं ।

क्रुद्ध, असफल हिंस्रक पशु की तरह लाल आंखों से विनोदसिंह नदी की उमड़ती धार की ओर देख रहा था । प्राण देकर उसे अपमान की चोट लगा जाने वाली के प्रति उसका मन आत्म-ग्लानि से जला जा रहा था—अविश्वसनीय, छलिया नारी ! वह कभी किसी की हुई है ? ◈

चार आने

बिन्दौर के राजा साहब को खेलों से विशेष शौक था। दूसरे तालुकेदार और बड़े-बड़े आई० सी० एस० अफसरों की देखा-देखी वे अपने सेक्रेटरी के साथ जीमखाने का टेनिस टूर्नामिण्ट देखने गये थे। खेल की पैंतराबाजी से बड़े-बड़े अफसरों और रईस लोगों के चेहरे प्रसन्नता से चमकते देख, उन लोगों के मुख से निरन्तर वाह-वाह सुन, राजा साहब को भी खेल से दिलचस्पी होने लगी।

सेक्रेटरी के कहने से राजा साहब ने इकहरे (singles) खेल के मुख्य विजयी के लिये ट्राफी (विजयपात्र) की घोषणा कर दी। खेल समाप्त होने पर दूसरे बड़े आदमियों की तरह उन्होंने भी खिलाड़ियों से हाथ मिलाया। राजा साहब को सन्तोष अनुभव हुआ, एक उचित काम किया गया है।

तीसरे दिन सेक्रेटरी साहब ने राजा साहब को अंगरेजी का अखबार लाकर दिखाया। उसमें राजा साहब का चित्र था। चित्र में वे टेनिस के इकहरे खेल के विजयी खिलाड़ी मिस्टर इर्शाद से हाथ मिला रहे थे। समाचार पत्र के दो कालमों में, राजा साहब की कद्रदानी और उदारता की प्रशंसा के साथ खिलाड़ी को विजयपात्र देने का समाचार छपा था। तब से टेनिस के खेल के प्रति राजा साहब के अनुराग की सीमा नहीं रही थी।

टेनिस के खेल सम्बन्धी अंग्रेजी शब्द निरन्तर उनकी जिह्वा पर रहते। टेनिस के बल्लों (रैकटों) के वजन और गेंद बनाने वाली कम्पनियों के नाम उन्हें याद हो गये। किसी भी समाचार-पत्र में, किसी भी स्थान पर टेनिस-मैच का समाचार प्रकाशित होने पर वे उसे पढ़ते या पढ़ा कर सुन लेते। सफर में आधा दर्जन बढ़िया टेनिस रैकेट उनके साथ रहते। मसूरी में रहते समय खिलाड़ियों का धारीदार कोट अपने स्थूल, शिथिल शरीर पर कसे वे प्रत्येक सन्ध्या छः आदमियों से ढकेली जाती रिक्शा पर सवार हो टेनिस के मैच में पहुंच जाते। वे टेनिस के संरक्षक समझे जाने लगे।

इर्शादहुसैन के लिये जीवन की सब से मूल्यवान् और प्रिय वस्तु थी उसका टेनिस का रैकेट। ऊंची कीमत का वह रैकेट इर्शाद को कालेज-टूर्नामेण्ट में विजयी होने के पुरस्कार में मिला था। इस रैकेट की बदौलत सम्मानित समाज के बड़े से बड़े महारथियों तक उसकी पहुंच हो पाती थी। बड़े से बड़े आई० सी० एस० अफसर, सर और तालुकेदार मुस्करा कर उससे हाथ मिलाते। यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं में कोई चमत्कार न दिखा सकने पर भी उसका आदर और महत्व था। उसके अपने घर में समृद्धि न होने पर भी समृद्ध लोग उसे आदर की दृष्टि से देखते। जस्टिस विकसन ने उससे हाथ मिलाया तो कलक्टर साहब ने भी शेक-हैण्ड किया। राजा साहब बिन्दौर ने उसे 'कार्लटन' होटल में चाय पीने के लिये निमंत्रित किया तो बिल्लूर के नवाब साहब ने भी उसे 'रायल' में बुलाया।

टेनिस के जोर पर समाज में सम्मान पाकर भी इर्शादहुसैन के जीवन की समस्या हल न हुई। वह घर में बड़ा लड़का था। घर के बोझ को सिर लिये बिना चारा न था। इर्शाद के पिता के समय प्रश्न था, घर और खानदान की इज्जत की रक्षा का। नवाबी के समय के जीवन-साधन अब न रहे थे परन्तु खानदान की इज्जत चली आती थी। इर्शाद के पिता

मियां शहनशाहहुसैन, जजी में पेशकार थे। इस नौकरी से उन्होंने घर को बहुत सम्भाला। भाइयों को तालीम दी, घर का मकान कुर्क होने से बचाया। इर्शादहुसैन के तीनों चाचा घर का कर्ज और इज्जत बड़े के सिर ओढ़ा, एक के बाद एक अलग जा बसे। मियां शहनशाहहुसैन से बड़ी-बड़ी उम्मीदें थीं परन्तु उन उम्मीदों के पूरी होने से पहले ही अल्लाताला ने उसे अपने पास बुला लिया।

कहावत है—शेर भूखा मर जाता है, घास नहीं खाता। वैसे ही खानदानी शरीफ़ इन्सान भूखा रह कर भी समाज में अपना सिर नीचा नहीं होने देता। मियां शहनशाहहुसैन की मृत्यु के बाद घर के भीतर सैकड़ों मुसीबतें सह कर भी इर्शाद और इनके छोटे भाइयों की तालीम जारी रही। घर की औरतों के बाहर निकलने का काम न था। कभी वे घर से निकलतीं तो पर्दे में टांगा बिलकुल ड्योढ़ी से सटा कर खड़ा किया जाता। दूधिया सफेद चादरें टांगे के आगे-पीछे तन जातीं। बैठक में कभी मेहमानों के आने पर बेगम साहिबा चांदी की कामदार तश्तरी में पान और खुशबूदार तम्बाकू भेजना न भूलतीं।

कुंजड़े घर की ड्योढ़ी पर आवाज लगाते तो भीतर से कहला दिया जाता—भई, सब्जी बाजार से आ गई है। मछली वाली को उत्तर मिलता—गोश्त ले लिया गया है। कसाई आवाज़ लगाता तो उसे उत्तर मिलता—मछली ले ली गई। फेरी बेकार होने पर इन लोगों ने पुकार लगाना छोड़ दिया। पान-ढोली वाले की फेरी बन्द न हुई। उधार के लिये झंझट होती थी परन्तु घर में पान का खर्च बन्द न हो सकता था।

मियां शहनशाहहुसैन पर वर्षों से लाला महादेवप्रसाद का तीन हजार का कर्ज था। मियां साल-छः महीने में सूद की रकम किसी न किसी तरह अदा कर ही देते थे। उम्मीद थी, लड़के के बरसिरे रोज़गार हो जाने पर कर्ज़ अदा कर देंगे और अपने पुश्तैनी मकान को नये सिरे से बनायेंगे।

मियां शहनशाहहुसैन की मृत्यु के बाद सूद की रकम मूल में मिलने लगी। चतुर लालाजी ने पिता के कर्जे के कागज इर्शादहुसैन के नाम बदलवा लिये। सूद की दर कम कर देने के लिये मकान गिरवी हो गया। लालाजी स्वर्गीय मियां शहनशाहहुसैन की स्मृति का ख्याल कर, उनके बेटे से ७००) सालाना सूद के बजाय मकान के किराये के रूप में ६००) रुपया लेने लग गये।

पुश्तैनी मकान हाथ से निकल जाने का दर्द इर्शाद और उनकी वाल्दा दोनों को ही कम न था लेकिन सूदखोर महाजन से मुकद्दमे-बाजी कर कचहरी जाने की बेइज्ज़ती कैसे बर्दाश्त की जाती। मकान के हिस्से में बसने वाले किरायेदारों से मिलने वाले किराये और महादेवप्रसाद को दिये जाने वाले किराये के अन्तर से ही किसी तरह ढक-ओढ़ कर शरीफ खानदान का गुजारा चलता था। जाहिरा हवेली उनकी ही थी। लाला महादेवप्रसाद शरीफ इन्सान ठहरे। उन्होंने वायदा कर लिया था, पांच-छः बरस जब तक इर्शाद बी० ए० पास कर कहीं नौकरी नहीं कर लेते, वे इस मामले में कुछ न बोलेंगे।

बी० ए० पास कर और टेनिस के मैदान में नाम कमा लेने पर भी अच्छी नौकरी पा सकने का मसला हल न हुआ। रोजगार के तौर पर सिवाय नौकरी के दूसरी राह न थी। मिस्टर इर्शाद की हवेली से उनकी हैसियत जांचने वाले लोग अक्सर यह भी कह बैठते—"मियां, फिलहाल ज़माने में नौकरी आसान नहीं और फ़िर नौकरी में रखा ही क्या है? वही महीने में गिनी-चुनी रुपल्ली। कोई रोजगार ही करो!"

इर्शाद को यूनिवर्सिटी की शिक्षा और टेनिस के खिलाड़ी के नाते बड़े आदमियों से दोस्ती और सम्मान का ख्याल कर दूसरे लोग सलाह देते—वल्लाह, क्या बनिये-बक्काल का काम करोगे? तुम्हारे खानदान ने हमेशा हुकूमत की है। बड़े-बड़े अफ़सरान, हुक्मरान राजा-नव्वाबों

तक तुम्हारी पहुंच है । डिप्टी कलक्टरी तुम्हारे लिये कौन बड़ी बात है ? इस सब आशावाद के बावजूद इर्शाद जानते थे, किसी भी अच्छी नौकरी की राह में कम्पीटीशन की कसौटियां हैं, जहां उम्मीदवारों को पहले दूसरे डिवीजन की चलनियों में छाना जाता है । सिफारिश से बहुत कुछ हो सकता है परन्तु सिफारिश को ड्योढ़ी तक पहुंचना भी तो आसान नहीं । यूं सेक्रेटेरियट की पचास-साठ की नौकरी के लिये किसी की सिफ़ारिश अथवा खुशामद करें तो उस में अपनी हेठी ।

सोच-सोच कर मिस्टर इर्शाद ने निश्चय किया—उन के लिये नौकरी की गुंजाइश सरकारी महकमों में नहीं, राजा-रजवाड़ों में ही हो सकती है । जहां केवल परीक्षा का ही नहीं, गुण का भी मूल्य हो । बार-बार उन्हें बिल्लूर के नवाब साहब और बिन्दौर के राजा साहब का ख्याल आ जाता । अन्तरंग मित्रों ने समझाया भी—जब वाक़फ़ियत है तो उस से फ़ायदा न उठाने का मतलब क्या ? ऐसे लोगों के यहां बीसियों मैनेजर और सेक्रेटरी पड़े रहते हैं । बीसियों दूसरी रियासतों और रजवाड़ों में ऐसे लोगों की रिश्तेदारियां और लिहाज रहते हैं । उन्हें ख्याल हो जाय तो तीन-चार सौ रुपया माहवार कौन बड़ी बात है लेकिन बड़े आदमी भी इन्सान का ख्याल उस की हैसियत से ही करते हैं ।

मिस्टर इर्शाद को मालूम था राजा साहब बिन्दौर मसूरी में हैं । अखबारों के खेल-समाचार के कालमों में उन का नाम छपता रहता था । साहस कर इर्शाद ने एक पत्र अंग्रेज़ी में टाइप कर राजा साहब को भेजा—शायद किसी काम से उन्हें मसूरी जाना पड़े । यदि ऐसा हुआ तो वह राजा साहब के दर्शन अवश्य करेंगे । बहुत जल्द ही राजा साहब का उत्तर आया—इर्शाद साहब अवश्य मसूरी तशरीफ़ लायें और राजा साहब के मेहमान बनें ।

× × ×

मित्रों ने इर्शाद को समझाया—जीवन में ऐसे अवसर कम आते हैं, ऐसे अवसर पर चूकना मूर्खता है। मिस्टर इर्शाद ने कुछ कर्ज लिया। दो नइ पतलूनें और कमीज़ें बनवायीं। टेनिस के धारीदार कोट और पतलून पर सफ़ाई और इस्त्री करवायी और रैकेट पर वार्निश। एक मित्र से सूटकेस उधार लिया। लखनऊ से मसूरी तक थर्ड-क्लास का किराया था लगभग आठ रुपये। सफ़र थर्ड-क्लास में भी हो सकता था परन्तु मसूरी की हैसियत बरकरार रखना जरूरी था। अधिक से अधिक जितना भी हो सका; पूरे साठ रुपये जेब में डाल इर्शाद घर से चल पड़े।

मसूरी में मोटर के अड्डे 'सनीव्यू' पर मोटर से उतर, सूटकेस और बिस्तर कुली के सिर पर उठवा इर्शाद राह पूछते, राजा साहब बिन्दौर की कोठी पहुंच सकते थे परन्तु राजा साहब बिन्दौर का नाम सुनते ही कोठी पर पहुंचा देने के लिये आतुर रिक्शा-कुलियों ने इर्शाद को घेर लिया। औचित्य और सम्मान का ख्याल कर इर्शाद रिक्शा पर लद कर चले और कुली उन का असबाब लेकर पीछे-पीछे।

कोठी पर राजा साहब ने तपाक से इर्शाद का स्वागत किया। उन्हें बरामदे में कुर्सी पर बैठा, उपस्थित सज्जनों से परिचय कराया। राजा साहब बिन्दौर ने इर्शाद की प्रशंसा में कहा—"नव्वाब साहब टेनिस ऐसी खेलते हैं कि इन के सामने रैकेट हाथ में लेने की मजाल लखनऊ में तो कोई क्या करेगा!"

इर्शाद साहब को ढो कर लाने वाले रिक्शा-कुली एक ओर खड़े अपनी ओर दृष्टि पड़ने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इर्शाद के मन में निरन्तर जेब से पैसे निकाल कर देने का ध्यान था परन्तु उस परिस्थिति में इस बात को इतना महत्व देना उचित न जंचा। राजा साहब का ध्यान दूसरी ओर होने पर इर्शाद उठे। जेब से पांच रुपये का नोट निकाल एक कारिन्दे को थमाते हुये उन्हों ने कहा—इन कुलियों को पैसे दे दिये

जायं। वे देखते रहे कि नोट कुलियों के पास पहुंच गया। बोझ उठाने वाले कुली ने भी आगे बढ़ कर सलाम किया। कुली माथा छूकर अब भी कह रहे थे—"राजा लोगों के यहां से बखशीश।" कारिन्दे ने कुछ और सुनने से इन्कार करने के स्वर में कह दिया, "बस ठीक है, जाओ बांट लो!" उस नोट से कुछ बच कर जेब में वापिस लौटने की आशा इर्शाद को थी परन्तु वह उसे पी गये।

इर्शाद साहब के लिये अलग कमरा ठीक हो गया। वे राजा साहब के साथ मेज़ पर खाना खाते, चाय पीते, बढ़िया से बढ़िया सिगरेटों के डिब्बे हर समय सम्मुख खुले रहते। विशेष अभ्यास न होने पर भी वे देखा-देखी सिगरेट लगा लेते। राजा साहब के साथ उनकी रिक्शा भी चलती। टेनिस कोर्ट में उन्होंने अपने हाथ दिखाये। राजा साहब अपने मित्रों से उनका परिचय कराते और नव्वाब कह कर सम्बोधन करते।

इर्शाद राजा साहब के साथ हैकमैन, सेवाय और शार्लविली की पार्टियों और नाचों में जाते। प्रतिदिन सैकड़ों रुपया पार्टी, डांस और ड्रिंक की सूरत में बहता नज़र आता। इस समृद्धि में इर्शाद के लिये तीन-चार सौ निकल आना कौन बड़ी बात थी? प्रश्न था केवल उस ओर ध्यान जाने भर का। समृद्धि के अनुपात से, जो जितना समृद्ध समझा जाता है उसका उतना ही अधिक सम्मान होता है, उतने ही अधिक रुपये उसके लिये बहाये जाते हैं। इस परिस्थिति में रुपये की कमी और गरीबी की चर्चा करने का साहस इर्शाद साहब के लिये सम्भव न था। किसी समय एकान्त देख वे इस सम्बन्ध में राजा साहब से बात करने का विचार करते रहे परन्तु वह समय न आया और जब कभी कुछ मिनिट के लिये एकान्त मिला भी तो असमृद्ध पहचाने जाकर सम्मान खो देने के भय ने गले को जैसे अवरुद्ध-सा कर दिया।

इर्शाद ने मन को समझाया, वह भीख नहीं मांगना चाहता। वह
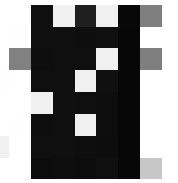
काम और मेहनत करने के लिये तैयार है परन्तु आंखें निरन्तर देख रही थीं—आदर-सम्मान काम और मेहनत का नहीं बल्कि काम और मेहनत करने की आवश्यकता न होने का ही है। रुपये का सम्मान अवश्य है परन्तु रुपया पैदा करने वाले श्रम का निरादर ही है। एक सप्ताह तक अवसर से किसी भी प्रकार लाभ उठा सकने में अपने को असमर्थ पा, इर्शाद साहब ने राजा साहब से लखनऊ लौट जाने की इजाजत चाही।

राजा साहब ने आग्रह किया—"अभी दो चार रोज़ और ठहरिये!"

राजा साहब की इच्छा के अनुकूल सेक्रेटरी साहब ने सुझाया—"नव्वाब साहब ट्रेनों में भीड़ का क्या हाल है, शायद ख्याल नहीं रहा? तीन दिन से कम नोटिस पर तो सीट रिजर्व हो ही नहीं सकती!"

सीट रिजर्व होने या न हो सकने के प्रश्न की उपेक्षा के भाव से इर्शाद साहब ने उत्तर दिया—"वाह, ऐसी कौन बात है?"

उस उपेक्षा की चिन्ता न कर, अपनी उपयोगिता दिखाने के लिये टेलीफोन की ओर बढ़ते हुये सेक्रेटरी साहब ने राजा साहब को सम्बोधन किया—"हुजूर, नव्वाब साहब के लिये किस तारीख के लिये सीट रिजर्व करा दी जाय, आज पांच है!"

इर्शाद साहब की ओर देख राजा साहब ने फर्माया—"ऐसी क्या जल्दी है, दो रोज तो और ठहरिये। छः और सात को रहिये। हां, आठ के लिये करा दो।"

सेक्रेटरी साहब ने मसूरी में रेल के दफ्तर को फोन किया। उत्तर मिला, सीटें पूरे सप्ताह के लिये रिजर्व हो चुकी हैं। सेक्रेटरी के इस उत्तर से इर्शाद साहब को सान्त्वना हुई थी परन्तु सेक्रेटरी साहब यों पराजय स्वीकार करने के लिये तैयार न थे। दुबारा फोन किया और जरा ऊंचे स्वर में बोले—"सुनिये, हम राजा साहब बिन्दौर के यहां से बोल रहे हैं। राजा साहब फर्माते हैं, एक सीट की जरूरत है नव्वाब इर्शादहुसैन

साहब के लिये, आठ तारीख को हावड़ा एक्सप्रेस में लखनऊ तक ।"

अब की बार उत्तर भिन्न था। मुस्करा कर सेक्रेटरी साहब ने फर्माया—"हुजूर को सलाम बोल रहे हैं और कहते हैं, टिकिट अलग रख लिया है । आदमी भेज कर मंगा लीजिये।" टिकिट की कीमत भी उन्होंने बता दी, इकतालिस रुपये आठ आने ।

इर्शाद साहब का चेहरा पीला पड़ जाना चाहता था। हृदय की सम्पूर्ण शक्ति और साहस से उन्होंने चेहरे के भाव को सम्भाला । उनके लिये राजा साहब की मार्फत सीट रिजर्व हो चुकी थी, टिकट खरीद लिया गया । बयालिस रुपये तुरन्त जेब से न निकाल देने का अर्थ होता, अपने आपको उस सब सम्मान के लिये अनाधिकारी प्रमाणित करना जो ऊंचे दर्जे में सफर करने वाले राजा साहब के अतिथि के रूप में उनका किया जा रहा था ।

इर्शाद साहब के मसूरी से चलने के दिन राजा साहब ने दोपहर को एक अच्छी खासी विदाई की दावत (फेयरवेल लंच) टेनिस के खिलाड़ियों को दे डाली । नये खिलाड़ियों से परिचय प्राप्त करने का राजा साहब के लिये यह अच्छा अवसर था। दोपहर की दावत के बाद तीन बजे नीचे जाने वाली मोटर से उन्हें विदा करने के लिये सेक्रेटरी साहब रिक्शा में 'सनीव्यू' तक आये । पहले से फोन कर उनके लिये टैक्सी में सीट रिजर्व की जा चुकी थी ।

एक रुपया देकर मोटर लारी में चुपचाप नीचे चले जाने के बजाय, कार की आराम देह पिछली गद्दी पर बैठ कर जाना इर्शाद को सूलों की सेज जान पड़ रहा था। जेब में शेष रह गये केवल चार रुपये इसके लिये पर्याप्त भी होंगे या नहीं ? यदि सेक्रेटरी साहब 'सनीव्यू' तक साथ न आते तो गले पर यह आखिरी छुरी क्यों फिरती परन्तु उनके साथ न आने का अर्थ होता, इर्शाद के सम्पूर्ण सत्कार का विद्रूप में परिणत हो जाना।
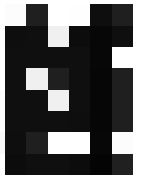
राजा साहब की कोठी से चलते समय नौकरों ने एक पंक्ति में खड़े होकर सलाम किया। इस सलाम का अर्थ वह समझा न हो सो बात नहीं परन्तु हृदय पर पड़ती भाले की इस चोट को वह अपने असामर्थ्य से आंखें फिरा, होंठ काट कर सह गया !

इतनी बड़ी हैसियत के मुसाफिर से किराये का तकाज़ा करना मोटर कम्पनी के एजेण्ट के लिये उचित न था। उसने विनय से रसीद सेक्रेटरी साहब की मार्फत 'नव्वाब' साहब के हाथ में पहुंचा दी। रसीद की ओर नज़र डाले बिना सेक्रेटरी ने उसे नव्वाब साहब के हाथ में दे दिया। नव्वाब साहब ने भी प्रकट उपेक्षा से उसे पतलून की जेब में खोंस लिया।

कार के चल पड़ने पर उस रसीद की उपेक्षा सम्भव न थी। इर्शाद ने रसीद निकाली और देखा—तीन रुपये आठ आने। फिर ध्यान ले देखा और भाग्य के सम्मुख सिर झुका एक दीर्घ निश्वास ले वह सीने पर बाहें बांध, सीट से पीठ टिका बैठ गया। तेज चाल से फिसलती जाती कार की आरामदेह गद्दी पर बैठ उसकी कल्पना अनुभव कर रही थी—एक कठोर अग्नि-परीक्षा में पूरा उतर कर वह सुरक्षित चला आ रहा है। राजा साहब की कोठी में बिताये दस दिन का उसके जीवन के भिन्न एक अस्तित्व था। दस दिन के इस जीवन का कोई आगा-पीछा न होने पर भी उसमें संतोष था। जैसे-तैसे उसने उसे निबाह दिया।

और जब देहरादून स्टेशन पर पहुंच ड्राइवर ने गाड़ी का पिछला दरवाजा खोल सलाम किया, इर्शाद सम्भ्रम-सहित उठ गाड़ी के बाहर आया। जेब में शेष रुपये-रुपये के चार नोट उसने ड्राइवर की ओर बढ़ा दिये। इर्शाद से पहले उतरने वाले अंग्रेज साहब पांच रुपये का नोट ड्राइवर को दे, धन्यवाद के सलाम की प्रतीक्षा न कर सीधे स्टेशन की ड्योढ़ी में चले गये थे। ड्राइवर ने झुक कर जो सलाम नव्वाब साहब को किया वह निश्चय ही आठ आने से अधिक मूल्य का था और जब ड्राइवर ने चारों

नोट जेब में रख लिये तब उपाय ही क्या था।

कार में सफर करने वाले मुसाफिर से आदेश की प्रतीक्षा किये बिना कुली इर्शाद का हल्का असबाब उठा स्टेशन के भीतर चल दिया। गाड़ी अभी प्लेटफार्म पर लगी न थी। सामान पहले दर्जे के मुसाफिरों के लिये विश्राम करने के कमरे में रख दिया गया।

अंग्रेज मुसाफिर गुसलखाने में चला गया था। इर्शाद पंखे के नीचे आराम कुर्सी पर सिर को दोनों हाथों से थाम बैठ गया। वह परेशान था, गाड़ी में असबाब रखने के बाद कुली को कम से कम चार आने पैसे देने ही होंगे और इर्शाद की जेब में भाग्य से एक भी पैसा शेष न था। इन चार आने पैसों के अभाव में नव्वाबी के सम्पूर्ण अभिनय की इमारत ढह कर गिर जाना चाहती थी। इर्शाद ने किसी चमत्कार की आशा में सभी जेबों में हाथ डाले परन्तु जो था नहीं वह कहां से निकल आता?

सहसा मस्तिष्क में एक विचार सूझा। अन्धमुंदी आंखों से अपने विचार की उधेड़बुन में वह कितनी ही देर बैठ रहा। रिफ्रेशमेण्टरूम का बैरा चाय के लिये पूछने आया। उसे इर्शाद ने सिर हिला इन्कार कर दिया। गाड़ी के प्लेटफार्म पर आते ही वह गुसलखाने में चला गया।

आधा घण्टा…पैंतालिस-पचास मिनिट…पूरा एक घण्टा गुजर गया। कुली बार-बार झांक कर देख रहा था। गाड़ी ने सीटी दे दी, गार्ड साहब ने सीटी बजाई, हरी झंडी दिखाई, गाड़ी चल दी लेकिन साहब गुसलखाने से निकले नहीं। जब साहब गुसलखाने से निकले, गाड़ी छूट चुकी थी।

इर्शाद ने परेशानी के भाव में पूछा—क्या गाड़ी छूट गई? कुली और वेटिंगरूम के बैरे ने सिर झुका कर उत्तर दिया—"हुजूर!"

इर्शाद ने टिकट चेकर बाबू के समीप जाकर शिकायत की—उसके गुसल करते समय ही गाड़ी छूट गई।

उत्तर मिला—"अब आप देहली एक्सप्रेस से मुरादाबाद जाकर
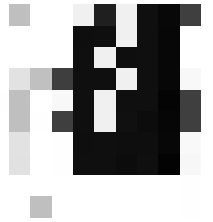
लाहौर-हावड़ा मेल पकड़ सकते हैं लेकिन सीट उसमें रिजर्व होना मुश्किल है।" मुरादाबाद में गाड़ी की प्रतीक्षा की असुविधा को असह्य बता इर्शाद ने कहा, "अब आज नहीं, वह कल सीधा लखनऊ की गाड़ी से ही जायगा और उसका फर्स्टक्लास का टिकट वापिस कर लिया जाय।

इर्शाद के उसी टिकट से आज के बजाय कल सफर करने में टिकट बाबू को कोई एतराज़ न था। टिकट वापिस भी हो सकता था परन्तु वह मसूरी में खरीदा जाने के कारण देहरादून में नहीं उस के लिये लखनऊ में ट्रेफिक सुपरिटेण्डेण्ट के दफ़तर में टिकट भेज कर पत्र लिखा जाना जरूरी था।

इतने गहरे विचार से चली गई चाल उल्टी पड़ गयी। इर्शाद के पांव तले से धरती खिसक गई। वह फिर आराम कुर्सी पर जा पड़ा। वेटिंग रूम के बाहर खड़ा कुली प्रतीक्षा कर रहा था और इर्शाद...वह कुली के चार आने मांग सकने के अधिकार के सम्मुख असमर्थ था। सब कुछ सह कर भी नव्वाबी की प्रतिष्ठा की मेहराब से ईंट खिसकी जा रही थी—केवल चार आने के रूप में!

चूक गयी

यदि मैं आप से पूछूं—पागल किसे कहते हैं तो आप क्या उत्तर देंगे ?

आप कहेंगे—जिस शख्स का दिमाग ठीक न हो, जो बहकी-बहकी बातें या बेहूदा हरकत करे, वह पागल है। जवाब ठीक है लेकिन सवाल हो सकता है, दिमाग की सही हालत क्या है ? इस बारे में पागल समझे जाने वाले इन्सान की राय का भी कोई मूल्य है या नहीं ?…किन बातों को बहकी हुई और किन हरकतों को बेहूदा समझ लिया जाय ?

मेरा खयाल है, सभी किस्म की बातें और हरकतें हम सभी लोग किसी न किसी वक्त करते हैं। केवल समय और स्थान के लिहाज से कुछ बातें बहकी हुई और हरकतें बेहूदा हो जाती हैं। पागल वे ही सब काम और बातें करते हैं, जो हम और आप करते हैं। उन्हें केवल समय और स्थान का ध्यान नहीं रहता। उन के दिमाग में समझ का कांटा गलत लाइन पर बदल जाता है और उन की जिन्दगी की रेलगाड़ी पूरी रफ्तार से दौड़ कर समाज के विश्वास और निश्चय की मजबूत पुस्तियों से टकराकर चूर-चूर हो जाती है। हमारा समाज अपने विश्वास की दृढ़ता के अभिमान में तिरस्कार-भरी करुणा की क्षणिक मुस्कान से कह देता है—पागल ! बिलकुल सही और सीधी लाइन चलती आदिरा की सुन्दर
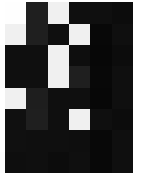
जीवनी के साथ भी यही हुआ ।

मेजर पालित के साथ मैं पागलखाना देखने गया और आदिरा को देखा तो मेजर ने बिलकुल तटस्थ भाव से कहा—' इस का पागलपन यही है कि यों तो जो कुछ यह करना चाहती है, वह बिलकुल सही और मुनासिब है लेकिन यह सब इसे इस समय कहना और करना नहीं चाहिये क्योंकि इस का वक्त निकल गया है । इस की जिन्दगी की गाड़ी 'फुल-स्टीम-अहेड' (पूरी रफ्तार से) जाना चाहती है लेकिन उस का वक्त निकल गया है इसलिये इसे किसी स्टेशन पर सिगनल नहीं मिल सकता । हमारे समाज के विश्वास और रीति को यह अपनी रफ्तार की शक्ति से धक्का न दे, यह किसी को कुचल न डाले इसलिये इसे यहां लाकर बन्द कर दिया गया है । यहां यह जीवन के शेष दिनों तक अपनी जिन्दगी की भाप को फुफकारों में समाप्त करती रहेगी और स्वयं भी समाप्त हो जायगी ।"

मेरा विश्वास है मनुष्य प्रकृति की अपेक्षा अधिक दूरदर्शी है । वह अपनी कला की सृष्टि, चाहे वह प्रकृति की नकल भर ही क्यों न हो सङ्गमरमर, पीतल, अष्टधातु या मजबूत कैनवस पर करता है । यह चीजें स्वयं इन्सानी जिन्दगी की अपेक्षा कहीं चिरस्थायी होती हैं । प्रकृति अपने सौन्दर्य और कला का प्रदर्शन करती है, कल्पना-सी नाजुक फूलों की पंखुड़ियों में और रक्त-मांस जैसे क्षण-भंगुर पदार्थों में । उन्हें देख कर या उन के ख्याल से मनुष्य एक समय अवाक रह जाता है, सक्ते में आ जाता है परन्तु उन का अस्तित्व क्या है ? यह चमत्कार कितनी देर टिक पाते हैं ? एक इन्सान की छोटी-सी जिन्दगी में ऐसे कितने ही कमाल आते हैं और चले जाते हैं ।

आदिरा को मैंने देखा । उस के सिर पर उजली चांदी लहरें ले रही थी । ध्यान से देखने पर महीन झुर्रियों से छाये उस के चेहरे पर एक

असाधरण सौन्दर्य का ढांचा विद्यमान था। उस की निगाहें खोई-सी थीं लेकिन उन निगाहों का घर ! वे आंखें, वे क्या न रही होंगी ?

एक बीते हुए सौन्दर्य की रेखाएं मौजूद थीं परन्तु सौन्दर्य, अदूरदर्शी प्रकृति का वह चमत्कार उड़ चुका था। रह गया था केवल संकेतमात्र जो कल्पना को सीमा रहित कर, अपनी उड़ान भरने के लिये उत्तेजित कर चुप रह जाता था। शायद ऐसे ही सौन्दर्य की कल्पना कर कवि बिहारी ने कहा होगा—'भये न केते जगत के चतुर चितेरे चूर···!' यानि उस दिव्य सौन्दर्य की छवि उतारने के प्रयत्न में संसार के कितने चतुर चित्रकार और कलाकार हथियार नहीं डाल गये।

परन्तु उस सौन्दर्य के प्रति श्रद्धा से माथा नवा देने से पहले ही आदिरा का बुढ़ापे का शृंङ्गार—माथे की बिन्दी, कानों के कर्णफूल, गले का हार और सब से अधिक उस की भूली-भटकी निगाहों ने मन में एक आशंका जगा दी, एक वितृष्णा पैदा कर दी। ठीक वैसे ही किसी सुन्दर चमकीले सांप की चपलता देख मन सिहर उठता है।

मेरे इस सौन्दर्य का कोई प्रयोजन है क्यों नहीं ?···अवश्य है।··· आओ !···आओ न ! दोनों बाहें फैलाये, सिनेमा की सफल नायिका की अदा से आदिरा ने कहा और आकाश की ओर दृष्टि उठाये वह एक ओर चल दी। उस की वह आयु और उस का वह द्रवित स्वर ! देख और सुन कर शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। कहा जा सकता था, वह किसी नाटक के अभिनय का रिहर्सल कर रही है या यही उस का पागलपन था।

"यहां भीतर देखो !" मेजर पालित ने आदिरा की कोठरी के भीतर मेरा ध्यान दिलाया। दीवार पर एक अधूरा तैल-चित्र लटका था। चित्र का मुझे शौक है। काफी चित्र मैंने देखे हैं। यूरोप में ऐसे चित्र भी देखे हैं जिन्हें संसार की कला का प्रतिनिधि कहा जाता है। रोजेटी और

राफेल के बनाये चित्र देखे हैं, बोगन के देखे हैं। भारतीय चित्र-कला तो अपने घर और अभिमान की चीज़ है ही परन्तु उस अधूरे चित्र को बहुत देर तक देखता रह गया।

"यह इसी का चित्र है।" मेजर पालित ने कहा। चित्र की ओर से निगाह हटाये बिना आदिरा के चेहरे की लाइनों और अनुपात को याद करने लगा। दोनों में समानता थी वैसे ही जैसे ताजमहल बनाने से पहले उस का नक्शा तैयार कर लिया जाय और बाद में ताजमहल से उस नक्शे का मिलान किया जाय। आदिरा सिर्फ एक धुंधला नक्शा भर थी और वह चित्र ताजमहल की अपनी सम्पूर्ण गरिमा लिये हुये।

उस चित्र की ओर से मैं निगाह न हटा सका और मेजर पालित कहते गये—"यह आदिरा बम्बई के एक बहुत प्रतिष्ठित और सम्पन्न परिवार की लड़की है। कम उम्र में विधवा हो गई थी। माता-पिता नये और उदार विचारों के लोग थे। उन्हों ने इसे अपना जीवन नये सिरे से ढालने की पूरी स्वतंत्रता दी। इस में बचपन से प्रतिभा थी और प्रतिभा के साथ दृढ़ता भी। इस ने पढ़ने-लिखने में मन लगाया परन्तु वह लिखना-पढ़ना केवल मानसिक संतोष के प्रयोजन से था।

"कहना पड़ेगा, बद-किस्मती से इस का परिचय एक बहुत नामी और सफल कलाकार से हो गया। कलाकार का नाम नहीं बता सकता। हम डाक्टर लोग गर्व से सिर ऊंचा किये रहने वाले कितने ही खान्दानों के कच्चे-चिट्ठे जानते हैं। कितनी बर्बाद और मासूम जिन्दगियों की आहों के राज हमारे दिलों में छिपे रहते हैं। उन्हें-जबान पर लाना पेशे के इखलाक के खिलाफ है। उस चित्रकार की कई चीजें तुम ने देखी होंगी, तारीफ की होंगी, कुछ समय से जिक्र नहीं सुना होगा और अब शायद सुनोगे भी नहीं।

"उस नामी चित्रकार से इस स्त्री का परिचय हो गया। ज्यों-ज्यों
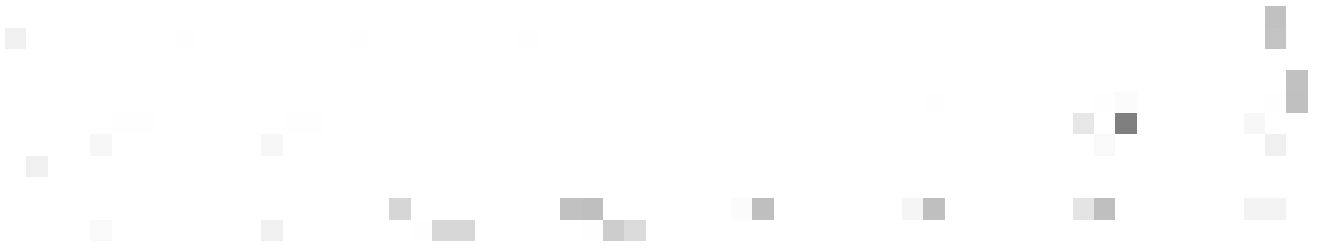
परिचय बढ़ता गया, इसकी श्रद्धा कलाकार पर बढ़ती गई। चित्रकार के मन में आदिरा के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। उस अनुराग को केवल भावनामय आत्मिक प्रेम समझ, संतोष पाने की आशा में आदिरा बढ़ती गई। चित्रकार की भावना क्रियात्मक रूप में आने लगी। आदिरा को यह मंजूर न था परन्तु हृदय में चित्रकार के प्रति प्रेम और श्रद्धा भी थी।

"दोनों में एक संघर्ष आरम्भ हुआ। कलाकार की ओर से पाने का और आदिरा की ओर से बचने का। चित्रकार आदिरा को सशरीर चाहता था और आदिरा केवल भावना के फूल उसके चरणों में अर्पण करती। दोनों में बहस होती। दोनों की अपनी दलीलें थीं। कई मास बीत गये।

"अतृप्ति की आंच से तप कर कलाकार निरुत्साह रहने लगा, शिथिल होने लगा। उसकी सम्पूर्ण प्रतिभा आदिरा को जीत लेने के प्रयास में खर्च होने लगी। आदिरा दृढ़ रही क्योंकि यह उसका अपना विश्वास और निष्ठा थी।

"चित्रकार का काम बन्द हो गया। अब वह केवल आदिरा का चित्र बनाना चाहता था। आदिरा से उसका मिलना कम होने लगा। शब्दों से निराश हो उसने आदिरा को रेखाओं में बांधने का यत्न आरम्भ किया। अपने आपको भूल जाने के लिये वह दिन-रात आदिरा के चित्र में लगा रहता।

"आदिरा के चेहरे का यह चित्र बना कलाकार ने चित्र दिखाने के लिये उसे अपने मकान पर बुलाया। चित्र का तैयार भाग आदिरा को दिखा चित्रकार ने कांपते हुये स्वर में कहा—मैं चाहता हूं तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर का जैसे का तैसा एक चित्र तैयार करना। स्वयं वंचित रह कर भी प्रकृति के इस अनूठे वरदान की एक यथा-तथ्य स्मृति छोड़ जाना चाहता हूं।

"लज्जा और अपमान से आदिरा का चेहरा लाल हो गया। स्वेद

कणों से सिक्त शरीर पर रोम खड़े हो गये। नेत्र झुका कर उसने उत्तर दिया—यह कला की साधना नहीं, वासना का प्रपंच है।

"परास्त कलाकार खीझ उठा। आदिरा की आंखों में आंखें गड़ा उसने प्रश्न से उत्तर दिया—तो फिर तुम्हारे इस निष्प्रयोजन सौन्दर्य के अस्तित्व का ही क्या उपयोग है? वह कलाकार मार खाये हुये की भांति आत्म-ग्लानि और लज्जा से अपना घर छोड़ कहीं चला गया और फिर लौटा नहीं।

"अपने घर लौट आदिरा कलाकार और उसकी अन्तिम प्रतारणा की बात—तो फिर तुम्हारे इस निष्प्रयोजन सौन्दर्य के अस्तित्व का ही क्या उपयोग है? सोचती रही।

"उसे आशा थी, सुबुद्धि आने पर कलाकार लौट आयगा पर वह लौटा नहीं। आदिरा स्वयं विक्षिप्त रहने लगी और एक दिन चित्रकार के मकान पर जा, उसके हाथों आरम्भ की गई अपनी वह तस्वीर उठा लाई। इस तस्वीर के सामने वह घण्टों बैठी रहती और स्वयं ही बड़बड़ाने लगती—तुम्हारे इस निष्प्रयोजन सौन्दर्य के अस्तित्व का ही क्या उपयोग है?

"वह सोचती रही—यद्यपि कलाकार की कला उसकी वासना का ही रूप था परन्तु वह अपराध क्यों कर था? और कलाकार की वासना स्वयं उसके अपने जीवन की पुकार और अस्तित्व की स्वीकृति ही तो थी ···मेरे लिये गर्व की वस्तु ही तो थी?

"समय बीतता गया। समय की बहती हुई धारा अदृश्य रूप से आदिरा के लावण्य के कण बहाये लिये जा रही थी। निरंतर चिन्ता से आदिरा सचेत होने लगी—उपयोग में आ सकने की अपनी शक्ति के प्रति और उसके लिये बीते जाते अवसर के प्रति। वह अधीर होने लगी, कलाकार अब लौटेगा नहीं?

"जैसे ढलवान में आकर नदी का वेग बढ़ जाता है, वह किनारे की काट अधिक तेजी से करती है वैसे ही ढलती आयु शरीर को तीव्रता से क्षीण करने लगती है। आदिरा अधीरता से अनुभव करने लगी, लावण्य का पुंज उसका शरीर क्षीण हुआ जा रहा है…निष्प्रयोजन…किसी भी उपयोग में आये बिना।

"कलाकार के लिये आदिरा की प्रतीक्षा खोज में बदलने लगी। आदिरा उसे ढूंढ़ने के लिये बदहवासी में घर से निकल पड़ती। उसकी यह बदहवासी सम्पन्न और सम्भ्रान्त परिवार के लिये बवाल बनने लगी। उस पर बन्धन लगाने की आवश्यकता हुई। बन्दन ने उसकी बदहवासी को भड़का दिया।

"अब एक बरस से वह यहां है। वह चाहती क्या थी? चाहती क्या है? उसके निष्प्रयोजन बीतते सौन्दर्य का अस्तित्व उपयोग में निकल आये। इस में गलती क्या है? केवल समय और परिस्थिति निकल गई है…वह चूक गई।"

मेजर पालित चुप हो गये। चित्र की ओर से दृष्टि हटा मैंने शोक प्रकट किया—"काश यह चित्र पूरा बन सकता! इसका पूरा न हो सकना मानव कला की संस्कृति के लिये कभी पूरी न हो सकने वाली हानि रह जायगी।"

मेजर पालित अब भी तटस्थ थे। उन्होंने पूछा—"और क्या यह नष्ट हो रहा जीवन फिर लौट आयगा?"

सोचने लगा—एक मानव का जीवन…कला की एक उत्कृष्ट कृति की अपूर्णता! कौन अपूर्णता अधिक चिन्तनीय है? जीवन की अपूर्णता में कला है, कला से जीवन की पूर्णता है। खैर जो भा हो, आदिरा चूक गई!

आदमी का बच्चा

दोपहर तक डौली कान्वेण्ट (अंग्रेजी स्कूल) में रहती है। इसके बाद उसका समय प्राय: आया 'बिन्दी' के साथ कटता है। मामा दोपहर में लंच के लिये साहब की प्रतीक्षा करती है। साहब जल्दी में रहते हैं। ठीक एक बज कर सात मिनिट पर आये, गुसलखाने में हाथ-मुंह धोया, इतने में मेज पर खाना आ जाता है। आधे घण्टे में खाना समाप्त कर, सिगार सुलगा साहब कार में मिल लौट जाते हैं। लंच के समय डौली खाने के कमरे में नहीं आती, अलग खाती है।

संध्या साढ़े पांच बजे साहब मिल से लौटते हैं तो बेफिक्र रहते हैं। उस समय वे डौली को अवश्य याद करते हैं। पांच-सात मिनट उससे बात करते हैं और फिर मामा से बातचीत करते हुये देर तक चाय पर बैठे रहते हैं। मामा दोपहर या तीसरे पहर कहीं बाहर जाती हैं तो ठीक पांच बजे लौट कर साहब के लिये कार मिल में भेज देती हैं। डौली को बुला साहब के मुआयने के लिये तैयार कर लेती हैं। हाथ-मुंह धुलवा कर डौली की सुनहलापन लिये, काली कत्थई अलकों में वे अपने सामने कंघी कराती हैं। स्कूल की वर्दी की काली-सफेद फ्राक उतार कर, दोपहर में जो मामूली फ्राक पहना दी जाती है उसे बदल नई बढ़िया फ्राक उसे पहनाई जाती है। बालों में रिबन बांधा जाता है। सैण्डल के पालिश तक पर मामा

की नज़र जाती है ।

बग्गा साहब मिल में चीफ इंजीनियर हैं । विलायत पास हैं । बारह सौ रुपया महीना पाते हैं । जीवन से संतुष्ट हैं परन्तु अपने उत्तरदायित्व से भी बेपरवाह नहीं । बस एक ही लड़की है डौली पांचवें वर्ष में है । उसके बाद कोई सन्तान नहीं हुई । एक ही सन्तान के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर सकने से साहब और मामा को पर्याप्त सन्तोष है । बग्गा साहब की नज़रों में सन्तान के प्रति उत्तरादायित्व का आदर्श ऊंचा है। वे डौली को बेटी या बेटा सब कुछ समझ कर संतोष किये हैं। यूनिवर्सिटी की शिक्षा तो वह पायेगी ही । इस के बाद शिक्षा-क्रम पूरा करने के लिये उस का विलायत जाना भी आवश्यक और निश्चित है । संतान के प्रति शिक्षा के उत्तरदायित्व का यह आदर्श कितनी सन्तानों के प्रति पूरा किया जा सकता है ? साहब कहते हैं—यों कीड़े-मकोड़े की तरह पैदा करके क्या फ़ायदा ? मामा—मिसेज बग्गा भी हामी भरती हैं—और क्या ?

"डौली !…डौली !…डौली !…" मामा तीन दफे पुकार चुकी थीं । चौथी दफे उन्होंने आया को पुकारा । कोई उत्तर न पा वे खिसिया कर स्वयं बरामदे में निकल आईं । अभी उन्हें स्वयं भी कपड़े बदलने थे। देखा—बंगले के पिछवाड़े से; जहां धोबी और माली के क्वार्टर हैं, आया डौली को पकड़े लिये ला रही है । मामा ने देखा और धक्क से रह गईं। वे समझ गईं—डौली अवश्य माली के घर गई होगी । दो-तीन दिन पहले मालिन के बच्चा हुआ था । उसे गोद में लेने के लिये डौली कितनी ही बार ज़िद्द कर चुकी थी । डौली के माली की कोठरी में जाने से मामा भयभीत थीं । धोबी के लड़के को पिछले ही सप्ताह खसरा निकला था।

लड़की उधर जाती तो उन बेहूदे बच्चों के साथ शहतूत के पेड़ के नीचे धूल में से उठा-उठा कर शहतूत खाती । उन्हें भय था, उन बच्चों के साथ डौली की आदतें बिगड़ जाने का । आया इन सब अपराधों का

उत्तरदायित्व अपने ऊपर अनुभव कर भयभीत थी । मेम साहब के सम्मुख उन की बेटी की उच्छृङ्खलता से अपनी बेबसी दिखाने के लिये वह डोली से एक कदम आगे, उस की बांह थामे यों लिये आ रही थी जैसे स्वच्छन्दता से पत्ती चरने के लिये आतुर बकरी को, जबरन कान पकड़ घर की ओर लाया जाता है ।

मामा के कुछ कह सकने से पहले ही आया ने ऊंचे स्वर में सफाई देना शुरू किया—"हम ज़रा सैंडल पर पालिस करें के तईं भीतर गयेन। हम से बोलीं कि हम गुसलखाने जायंगे । इतने में हम बाहर निकल कर देखें तो माली के घर पहुंची हैं । हम को तो कुछ गिनती ही नहीं । हम समझायें तो उल्टे हम को मारती हैं ...।"

इस पेशबन्दी के बावजूद आया को डांट पड़ी ।

"दिस इज़ वेरी सिली !" मामा ने डोली को अंग्रेज़ी में फटकारा। अंग्रेज़ी के सर्भ। शब्दों का अर्थ न समझ कर भी डोली अपना अपराध और उस के प्रति मामा की उद्विग्नता समझ गई ।

तुरन्त साबुन से हाथ-मुंह धुला कर डोली के कपड़े बदले गये । चार बज कर बीस मिनट हो चुके थे इसलिये आया जल्दी-जल्दी डोली को मोजे और सैण्डल पहना रही थी और मामा स्वयं उस के सिर में कंघी कर उस की लटों के पेचों को फीते से बांध रही थी । स्नेह से बेटी की पलकों को सहलाते हुये उन्हें अचानक गर्दन पर कुछ दिखलाई दिया—जूं ! बज्रपात हो गया । निश्चय ही जूं माली और धोबी के बच्चों की संगत का परिणाम थी । आया पर एक और डांट पड़ी और नोटिस दे दी गई कि यदि फिर डोली आवारा, गन्दे बच्चों के साथ खेलती पाई गई तो बस बर्खास्त कर दी जायगी ।

बेटी की यह दुर्दशा देख मां का हृदय पिघल उठा । अंग्रेजी छोड़ वे द्रवित स्वर में अपनी ही बोली में बेटी को दुलार से समझाने लगीं—

"डौली तो प्यारी बेटी है, बड़ी ही सुन्दर, बड़ी ही लाड़ली बेटी। हम इस को सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनाते हैं। डौली, तू तो अंग्रेजों के बच्चों के साथ स्कूल जाती है न बस में बैठ कर! ऐसे गंदे बच्चों के साथ नहीं खेलते न!"

मचल कर फर्श पर पांव पटक डौली ने कहा—"मामा, हम को माली का बच्चा ले दो, हम उसे प्यार करेंगे।"

"छी···छी···!" मामा ने समझाया, "वह तो कितना गन्दा बच्चा है! ऐसे गन्दे बच्चों के साथ खेलने से छी-छी वाले हो जाते हैं। इन के साथ खेलने से जुएं पड़ जाती हैं। वे कितने गन्दे हैं, काले-काले धत्त! हमारी डौली कहीं काली है? आया, डौली को खेलने के लिये मैनेजर साहब के यहां ले जाया करो। वहां यह रमन और ज्योति के साथ खेल आया करेगी। इसे शाम को कम्पनी बाग ले जाना।"

डौली ने मां के गले में बाहें डाल विश्वास दिलाया कि अब वह कभी गन्दे और छोटे लोगों के काले बच्चों के साथ नहीं खेलेगी। उस दिन चाय पीते-पीते बग्गा साहब और मिसेज बग्गा में चर्चा होती रही कि बच्चे न जाने क्यों छोटे बच्चों से खेलना पसन्द करते हैं।···एक बच्चे को ही ठीक से पाल सकना मुश्किल है। जाने कैसे लोग इतने बच्चों को पालते हैं।···देखो तो माली को! कमबख्त के तीन बच्चे पहले हैं, एक और हो गया।

× × ×

बग्गा साहब के यहां एक कुतिया विचित्र नस्ल की थी। कागजी बादाम का सा रंग, गर्दन और पूंछ पर रेशम के से मुलायम और लम्बे बाल, सीना चौड़ा। बाहों की कोहनियां बाहर को निकली हुईं! पेट बिलकुल पीठ से सटा हुआ। मुंह जैसे किसी चोट से पीछे को बैठ गया
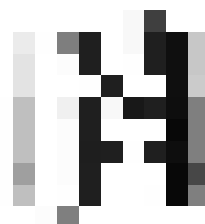
हो। आंखें गोल-गोल जैसे ऊपर से रख दी गई हों। नये आने वालों की दृष्टि उसकी ओर आकर्षित हुये बिना न रहती। यही कुतिया की उपयोगिता और विशेषता थी। ढाई सौ रुपया इसी शौक का मूल्य था।

कुतिया ने पिल्ले दिये। डौली के लिये यह महान उत्सव था। वह कुतिया के पिल्लों के पास से हटना ही न चाहती थी। उन चूहे जैसी मुंदी हुई आंखों वाले पिल्लों को मांगने वालों की कमी न थी परन्तु किसे दें और किसे इनकार करें? यदि इस नस्ल को यों बांटने लगें तो फिर उस की कद्र ही क्या रह जाय? कुतिया का मोल ढाई सौ रुपया उसके दूध के लिये तो होता नहीं!

साहब का कायदा था, कुतिया पिल्ले देती तो उन्हें मेहतर से कह गरम पानी में गोता दे मरवा देते। इस दफे भी वे यही करना चाहते थे परन्तु डौली के कारण परेशान थे। आखिर उसके स्कूल गये रहने पर बैरे ने मेहतर से काम करवा डाला।

स्कूल से लौट डौली ने पिल्लों की खोज शुरू की। आया ने कहा—"पिल्ले मैनेजर साहब के यहां रमन को दिखाने के लिये भेजे हैं, शाम को आ जायेंगे।"

मामा ने कहा—"बेबी, पिल्ले सो रहे हैं। जब उठेंगे तो तुम उनसे खेल लेना।"

डौली पिल्लों को खोजती ही फिरी। आखिर मेहतर से उसे मालूम हो गया कि वे गरम पानी में डुबो कर मार डाले गये हैं।

डौली रो-रोकर बेहाल हो रही थी। आया उसे पुचकारने के लिये गाड़ी में कम्पनी बाग ले गई। डौली बार-बार पूछ रही थी—"आया, पिल्लों को गरम पानी में डुबो कर क्यों मार दिया?"

आया ने समझाया—"डैनी (कुतिया) इतने बच्चों को दूध कैसे पिलाती? वे भूख से चेऊं-चेऊं कर रहे थे इसीलिये उन्हें मरवा दिया।"

दो दिन तक डैनी के पिल्लों का मातम डैनी और डौली ने मनाया फिर और लोगों की तरह वे भी उन्हें भूल गईं।

माली के नये बच्चे के रोने की 'कें-कें' आवाज आधी रात में, दोपहर में, सुबह-शाम किसी भी समय आने लगती। मिसेज़ बग्गा को यह बहुत बुरा लगता। झल्ला कर वे कह बैठतीं—"जाने इस बच्चे के गले का छेद कितना बड़ा है।"

बच्चे की कें-कें उन्हें और भी बुरी लगती जब डौली पूछने लगती—"मामा, माली का बच्चा क्यों रो रहा है?"

बिन्दी समीप ही बैठी बोल उठी—"रोयेगा नहीं तो क्या, मां के दूध ही नहीं उतरता।"

मामा और बिन्दी को ध्यान नहीं था कि डौली उनकी बात सुन रही है। डौली बोल उठी—"मामा, माली के बच्चे को मेहतर से गरम पानी में डुबवा दो तो फिर नहीं रोयेगा।"

बिन्दी ने हंस कर धोती का आंचल होठों पर रख लिया। मामा चौंक उठी। डौली अपनी भोली, सरल आंखों में समर्थन की आशा लिये उनकी ओर देख रही थी।

"दिस इज़ वेरी सिली डौली···कभी आदमी के बच्चे के लिये ऐसा कहा जाता है!" मामा ने गम्भीरता से समझाया। परिस्थिति देख आया डौली को बाहर घुमाने ले गई।

तीसरे दिन संध्या समय डौली मैनेजर साहब के यहां रमन और ज्योति के साथ खेल कर लौट रही थी। बंगले के दरवाजे पर माली अपने नये बच्चे को कोरे कपड़े में लपेटे दोनों हाथों पर लिये बाहर जाता दिखाई दिया। उसके पीछे मालिन रोती चली आ रही थी।

आया ने मरे बच्चे की परछाईं पड़ने के डर से उसे एक ओर कर लिया। डौली ने पूछा—"यह क्या है? आया, माली क्या ले जा रहा है?"
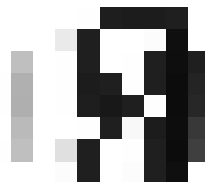
"माली का छोटा बच्चा मर गया है।" धीमे से आया ने उत्तर दिया और डौली को बांह से थाम बंगले के भीतर ले चली।

डौली ने अपनी भोली, नीली आंखें आया के मुख पर गड़ा कर पूछा—"आया, माली के बच्चे को क्या गरम पानी में डुबो दिया ?"

"छि: डौली, ऐसी बातें नहीं कहते !" आया ने धमकाया, "आदमी के बच्चे को ऐसे थोड़े ही मारते हैं !"

डौली का विस्मय शान्त न हुआ। दूर जाते माली की ओर देखने के लिये घूम कर उसने फिर पूछा—"तो आदमी का बच्चा कैसे मरता है ?"

लड़की का ध्यान उस ओर से हटाने के लिये उसे बंगले के भीतर खींचते हुये आया ने उत्तर दिया—"वह मर गया, भूख से मर गया है। चलो मामा बुला रही हैं।"

डौली चुप न हुई, उस ने फिर पूछा—"आया, हम भी भूख से मर जायेंगे ?"

"चुप रहो डौली !" आया झुंझला उठी, "ऐसी बात करोगी तो मामा से कह देंगे !"

लड़की के चेहरे की सरलता से उस का मां का हृदय पिघल उठा। उस की घुंघराली लटों को हाथ से सहलाते हुये आया कहने लगी—"बैरी की आंख में राई-नोन ! हाय मेरी मिस साहब, तुम ऐसे आदमी थोड़े ही हो !···भूख से मरते हैं कमीने आदमियों के बच्चे !"

कहते-कहते आया का गला रुंध गया। उसे अपना लल्लू याद आ गया···दो बरस पहिले···! तभी से तो वह साहब के यहां नौकरी कर रही थी।
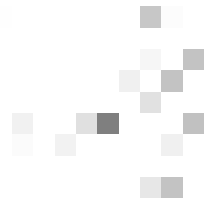
पुलिस की दफा

पंजाब के स्कूलों में गरमी की छुट्टियां बरसात में होती हैं। गांव पहुंचने से पहले ही सब ओर गहरी हरियाली छायी रहती है। स्टेशन से कसबे तक पक्की और कच्ची सड़क के दोनों ओर खेतों में धान और मक्का घुटनों तक बढ़ आते हैं। सड़क किनारे गढ़ों में गंदला जल ताल-तलैया के रूप में भर जाता है।

बन्देगढ़ कांगड़े के पहाड़ों की तराई में एक बहुत छोटा-सा कसबा है। आस-पास के पहाड़ी गांवों के लोग मक्का और धान बेच गुड़, नमक, तेल, तम्बाकू और कपड़ा आदि खरीद ले जाते हैं। पांच-छः दूकानें बजाजों की हैं, तीन-चार सुनारों की। राधे पंसारी जनरल मर्चेण्ट और हकीम भी है। अजवायन, जीरा, लालटेन और किसानों के औजारों के लिये कच्चा लोहा तक वह बेचता है। कसबे में डाकखाना, थाना और प्रायमरी स्कूल भी है।

गांव भर में मैं ही अकेला व्यक्ति हूं जिस ने होशियारपुर और जालन्धर जाकर बी० ए० की डिग्री हासिल की है और अब फगवाड़े के हाई-स्कूल में मास्टर हूं।

मानसिक रूप से कूप-मण्डूक नहीं। जानता हूं, यह संसार विशाल और विस्तृत है—रोचक और रहस्यमय है। स्कूल में लड़कों को भूगोल
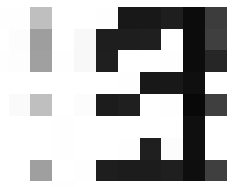
पढ़ाता हूं। गरमियों के दो मास के अवकाश में स्वीडन जाकर मध्य-रात्रि के सूर्य के दर्शन नहीं कर सकता, वीनस की गलियों में गंडोला की सैर भी नहीं कर सकता परन्तु इस विस्तृत और विचित्र देश में भी बहुत कुछ है—कराची, बम्बई, मद्रास और पुरी में समुद्र-तट है। उस से भी समीप पेशावर में खैबर का ऐतिहासिक दर्रा है और स्वर्ग की उपमा पाने वाला काश्मीर भी। मैं अभी तक सैकड़ों राजवंशों को निगल जाने वाली अपने देश की राजधानी दिल्ली भी नहीं देख पाया।

छुट्टियों के अन्त में प्रति वर्ष जब अपने सीमित, संकुचित कसबे से उकता जाता हूं, आने वाली छुट्टियों में काश्मीर जाकर शिकारे पर निशात, शालीमार और मार्तण्ड की सैर करने का निश्चय करता हूं। पहलगांव, गुलमर्ग, कुक्कड़नाग, बैरीनाग सब मुझे याद हैं परन्तु आये साल छुट्टियों के एक सप्ताह पूर्व से बन्देगढ़ का आकर्षण प्रबल हो जाता है। विचार बदल जाते हैं। रक्खा हलवाई की धुएं से काली, ततैयों और बरैंयों से छाई दूकान गुलमर्ग की फूलों से भरी उपत्यकाओं और अधीत्यकाओं से कहीं अधिक चित्रमय और मनमोहक बन जाती है। उस की दूकान के गुड़ के सेव और तेल के पकौड़, काश्मीर के बागों की चेरी, बग्गूगोशे और सेवों से अधिक आकर्षक बन जाते हैं। राधे पनसारी का चूर्ण डाक्टर साह के कार्मिनेटिव मिक्सचर से अधिक विश्वास योग्य जान पड़ने लगता है। मुरली सुनार अपनी चांदी के चश्मे को सूर्य से ४५ अक्षांस पर साधे, मेरी प्रतीक्षा में धमकाता सुनाई पड़ता है—हां, अब तो बम्बई और विलायत जाओगे, टाट 'गन्दा' करने को हमारी ही दूकान रह गयी थी ? कल्पना में काहनसिंह अपने पके गलमुच्छे संवार कर कहता सुनाई पड़ता—अब कहानी नहीं सुनोगे, क्यों ? उस की रहस्यमय कहानियां याद आने लगती हैं। फिर दादी इस वर्ष जिन्दा हैं, अगले वर्ष का क्या ठिकाना ? यह तो सृष्टि का क्रम है। बुजुर्गों की छत्र-छाया सिर पर बनी रहे। पत्नी और

एक वर्ष के बच्चे की याद की बात कहना ढीठपना है। सब लोग जानते हैं—वे जानते भी हैं पर व्यवहार ऐसा होना चाहिये मानो वे हैं ही नहीं।

गांव में मेरी एक स्थिति है और आदर भी है। वहां कोई मेरी उपेक्षा नहीं करता। जाते ही सब लोग आन्तरिकता और चिंता से स्वास्थ्य का हाल और दूसरी बातें पूछते हैं मानो वर्ष-भर मेरे विछोह में वे कलपते रहे हैं। वर्ष-भर स्कूल में लड़कों की सन्दिग्ध और शिकायत-भरी, हेड-मास्टर की हुकूमतभरी और दूसरे सहयोगी मास्टरों की प्रतिद्वन्द्विता-भरी दृष्टियों से मन इतना विषण्ण हो जाता है कि अपनी प्रतीक्षा में बिछी बन्देगढ़ की आंखों में जा कर विश्राम पाये बिना जीवन सम्भव नहीं जान पड़ता।

फिर वही सब बातें होने लगती हैं जिन से छुट्टियां समाप्त होने के पहले उकता जाता हूं। मकान के निचले बरामदे में मोढ़े पर बैठे-बैठे पुरानी पाठ्य पुस्तकों को पढ़ते रहना, कलमसिंह की छाजन पर से पीपल के पत्तों को हिलते देखते रहना और उस से बहुत दूर ज्वालामुखी की पहाड़ियों की अस्पष्ट-सी रेखा। गली में बरसात का कीचड़, फज़ल और महम्दे की चीनी बत्तखों के झुन्डों का एक दूसरे के पीछे गली के पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व दाने-दुनके और गिलाज़त की खोज में धावे करना, पत्थर मढ़ी गली में पहाड़ी गांव से आने वाले खच्चरों का गुजरना।

संध्या समय बिशन भड़भूजे के छप्पर से धुए के बादलों के साथ ताजे भुनते चने और मक्का की खीलों की सोंधी-सोंधी गन्ध, बिशन की भट्ठी के सम्मुख गली और आस-पास के मुहल्ले के बच्चों का जमघट, उन की महीन और तीखी आवाजें—कल्लू, नारायन, मत्तो, खिज्जू रहीमा जिन्हें मैं प्रति वर्ष बालिस्त-बालिस्त भर देखता आया हूं। फिर वही अदम्य आकर्षण बन्देगढ़ खींच लाता है और फिर मैं उन से उकताने लगता हूं।

× × ×

बन्देगढ़ आये डेढ़ सप्ताह गुजर गया। दोपहर को नींद के बाद जम्हाइयां लेता नीचे बराम्दे में मोढ़े पर आकर बैठा था कि पूर्व की ओर से गुरो छोटी सी पोटली कांख में दबाये दिखाई दी। जम्हाई से खुले जबड़ों को बस में कर पूछा—"भाभी, कब आयीं ?"

कलमसिंह पिछले वर्ष भरती होकर लाम पर चला गया था। हर महीने उस का मनीआर्डर घर आ जाता था। मनीआर्डर गुरो के नाम आता था। गुरो की सास इस बात से बहुत बिगड़ती थी। उस का कहना था—लड़के का ब्याह कर उसे खो दिया। काली चोटी वाली ने लड़के को जाने क्या कर दिया कि उसी का हो रहा, पेट से पैदा करने वाली मां कुछ भी ना रही।

पिछले तीन महीने से कलमसिंह की कुछ खबर नहीं आ रही थी। मां को सन्देह था, बहु ने रुपये भेजने और खत लिखने को मना कर दिया है। बेटे के प्रति अपना क्रोध वह बहू पर झाड़ती। दुपट्टा गले में डाल वह गली किनारे की खिड़की के पास बैठ जाती और हाथ बढ़ा कर घंटों कोसती रहती—"तूने यह किया, तूने वह किया, तूने उसे सिखा कर लाम पर भेज दिया। जल गया तेरा पेट जो मेरे बेटे की कमाई से नहीं भरा। तेरी कोख में पत्थर भरे हैं। तेरे मां-बाप ऐसे, तेरे मायके वाले वैसे…।"

छुट्टियों में गांव आने पर सुना था, परेशान हो गुरो अपने मायके भूरोवाल चली गई है। सहसा उसे सम्मुख देख पूछा—"क्या अकेले ही? … कुशल तो है ?"

"हां बीर! (भैया)……वे लोग आने नहीं देते थे। भाई कहते थे, रखड़ी (राखी) के बाद जाना। रखड़ी से पहले हम छोड़ने नहीं जायंगे। एक बहन है, उसे सावन में कैसे घर से निकाल दें। मेरा दिल नहीं माना। तीन महीने हो गये, लाम पर से तुम्हारे भाई की कोई खबर

नहीं आयी । चिट्ठी तो इसी पते से आती है । क्या करूं, चिट्ठी आती है तो सास दबा लेती हैं । मेरा दिल नहीं । चलूं देखूं, कोई खबर आयी हो । तुम कब आये ? इधर कोई चिट्ठी तो नहीं आयी ?"

विश्वास दिलाया—"नहीं, इधर दस दिन के भीतर तो नहीं आयी। चिट्ठी आयेगी तो मैं तुम्हें ज़रूर खबर कर दूंगा ।"

पहाड़ का आंचल होने से बन्देगढ़ में वर्षा अधिक होती है । पहाड़ों पर चढ़ने से पहले बादल पर्वत श्रेणियों से टकराकर छलक पड़ते हैं । प्रायः दोपहर भर बादल बरसता रहता है । उस समय खपरैलों पर पड़ती वर्षा की गूंज में ऐसी नींद आती है जैसे कोई थपकी देकर सुला रहा हो। दोपहर की नींद के बाद नीचे आ देखता हूं, गुरो अपने पुराने अभ्यास के अनुसार दोपहर में मेरे निचले बरामदे के सामने अपनी खिड़की में चर्खा कातने बैठी है । मेरी दृष्टि प्रायः उस ओर चली जाती है। उस का उदास पीला चेहरा, मैला कुरता और लाल छींट की सलवार और सिर पर बेपरवाही से समेटा हुआ दुपट्टा । कभी गली में आहट पा, आकाश से पृथ्वी को छूती वर्षा के तारों में से उस की दृष्टि मेरी ओर भी हो जाती । पहचान पाने की एक हल्की सी मुस्कराहट, बादलों में से पल भर को झांक जाने वाली धूप की भांति आकर विलीन हो जाती । सावन की यह सूनी श्यामल दुपहरिया को किसी परस्पर रहस्य में बिताने का प्रोत्साहन गुरो के उदास मुख से कभी न मिला । वह यों भाव-शून्य होकर चर्खा चलाती रहती मानों वह चर्खे का ही अंग है ।

तीसरे पहर डाकिया इलाही मियां छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों का गोल पीछे लिये बोली-ठोली करते हमारी गली से गुजरे । एक पोस्ट-कार्ड मेरे लिये था । साढ़े तीन महीने बाद कलमसिंह की भी चिट्ठी आयी । डाकिये को देख बुढ़िया हांफती हुई ऊपर की छत से उतरी और चिट्ठी ले पढ़ाने मेरे यहां आ गई । गुरो ऊपर की खिड़की से देखती रही ।
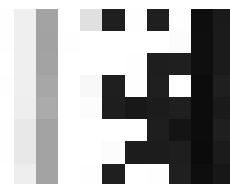
अपने नाम आया पोस्टकार्ड पढ़ सकूं कि इस से पहले अनेक आशीर्वाद दे बुढ़िया ने सरकारी मोहर का एक लिफाफा मेरे हाथ में दे दिया।

कठिनता से वह दुखदाई समाचार बुढ़िया को सुनाया। कलमसिंह लाम पर खेत हो गया था। बारह रुपया महीना गुरो के नाम कलमसिंह की पेंशन का हुक्म भी था।

बुढ़िया चीख मार, पछाड़ खा वहीं गिर पड़ी। ऊपर से मेरी दादी उतर आयीं। अगल-बगल के मकानों से रामलाल और शेरसिंह के घर की स्त्रियां भी झांकने लगीं। और भी बूढ़े-बुढ़िया एकत्र हो सिर और कपड़े नोचती, छाती पीटती कलमसिंह की मां को सम्भालने लगीं। मैंने एक बार ऊपर गुरो की ओर देखा—वह अपने चर्खे के सामने निश्चल बैठी रह गई।

कसबे भर के बूढ़े, बुढ़ियां कलमसिंह के मकान में कुछ समय के लिये बैठने आते और आंखें पोंछते बुढ़िया को सान्त्वना दे चले जाते।

चार-पांच दिन तक उस खिड़की से समय-असमय बुढ़िया का विलाप सुनाई देता रहा। गुरो के रोने का स्वर नहीं सुनाई दिया। बुढ़िया के विलाप में सीठने (मृतक की प्रशंसा) और कोसने सभी शामिल थे। उस हृदय-विदारक चीत्कार के कारण अपने निचले बरामदे में बैठना सम्भव न होता। निरन्तर वर्षा के कारण कहीं जाना भी कठिन था।

दो सप्ताह से अधिक गुजर गया। पहले पहर आकाश खुलकर धूप फैल रही थी। बुढ़िया आयी। उस की आंखें सूजी हुई और लाल थीं। कलमसिंह की मृत्यु के समाचार का बादामी सरकारी कागज और तहसील के नाम पेंशन के हुक्म का कागज ले किसी तरह जीना चढ़ कर वह हमारे यहां ऊपर पहुंची।

मेरी सौ बलाएं अपने सिर ले, बुढ़िया ने फिर से कागज पढ़ कर सुना। निरन्तर बहते आंसुओं को दुपट्टे से पोंछने का व्यर्थ प्रयत्न करते

हुये उस ने पूछा—"पेंशन के लिये मैं कहां जाऊं ?" गुरो के प्रति संकेत कर बुढ़िया ने कहा, "उस का क्या है । उस का मायके में सब कुछ है । वह जवान है । उस के हाथ-पैर चलते हैं । उसे क्या फिक्र है, मेरा तो सहारा वही लड़का था । इस कोख से तीन लड़के पैदा किये । यही एक बचा था । उसे भी डायन खा गयी ।" शंकर खत्री शंकरगढ़ जा रहा था। उसी के साथ जाने की बात कह बुढ़िया चली गयी ।

भादों जा रहा था । बादलों का रंग गहरा हो गया । गर्जन अधिक और वर्षा कम होने लगी । गुरो के चेहरे पर आने-जाने वाली मुस्कराहट की धूप भी विलीन हो चुकी थी । कलमसिंह के छप्पर के निचले तल्ले में शंकर खत्री गुड़ भर लेता था । ऊपर खपरैल की छत के नीचे एक कोठरी में उस खिड़की के अतिरिक्त बैठने की और जगह न थी । गुरो अब भी वहीं बैठी रहती ।

तेरहवीं के बाद से उस ने फिर चरखा भी रख लिया । चरखे से तार भी खींचती ही थी । अब नीचे गली में आहट सुन उस की दृष्टि उधर न जाती और कभी उधर देखने लगती तो वहां देखने का कुछ न होने पर भी देखती ही रहती । जो कुछ वह देखती थी वह गली में नहीं, उस के मन में ही था । मैं अब भी कभी उस की ओर देख लेता परन्तु देखने से दुख सा होता । दृष्टि टिक न पाती । इस से प्रायः उधर देखता ही न था ।

वही तीसरे पहर का समय था, गुरो अपनी खिड़की में और मैं निचले बरामदे में । एक गहरी बौछार बरस कर पानी थम गया था । गुरो अपनी खिड़की की चौखट से सिर टिकाये नीचे खिड़की की ओर आंखें किये बैठी थी । मेरी दृष्टि उस की ओर गयी और फिर नीचे गली में ।

वर्षा के बाद फजल और महम्दे की चीनी बत्तखें अपने चौड़े झिल्लीदार पंजों पर अपना बदन तौलतीं, चारे की खोज में गली में निकल पड़ीं ।

शंकर खत्री अर्थी के लिये बांस, फूस और रस्सी ले आया। दुर्भाग्य से उसी समय फिर बूंदें आ गयीं। धीरे-धीरे अर्थी बन रही थी और चर्चा चल रही थी—गुरो की बदकिस्मती की—मरना तो था ही, दस रोज पहले मरती। नसीबन, सुहागिन तो कहलाती। अर्थी पर फुलकारी पड़ जाती।

पानी रुका तो अंधेरा हो गया। शमशान दूर था, फिर भी मोहल्ले में किसी गरीब का मुर्दा पड़ा रहे, यह कैसे हो सकता था। लालटेन जला दी गई। लोग अर्थी पर कंधा लगाने को ही थे कि हवलदार साहब ने आ दारोगा साहब का हुक्म सुनाया—"लाश बिना तहकीकात के नहीं उठ सकती।"

बेबस लोग इधर-उधर खिसकने लगे। दारोगा साहब स्वयं कुछ दूरी पर खड़े रहे। रामलाल, शंकर खत्री और मैंने आगे बढ़ दारोगा साहब से बातें कीं।

दारोगा साहब को मामले में शक की गुंजायश जान पड़ती थी। मरहूमा को कोई बीमारी नहीं थी। सुबह के वक्त पीपल वाले कुएं से पानी का घड़ा लाते उसे देखा था। बुढ़िया का सलूक उस के साथ अच्छा नहीं था। मरहूमा के खाविन्द ने अपना पेंशन की वारिस अपनी बीबी को मुकर्रर किया था। बुढ़िया इस से खुश नहीं थी।

दारोगा बोले—"साहब, क्या किया जाय, हमें अफसोस है ऐसे वक्त संग-दिली से काम लेना पड़ता है लेकिन जुर्म की तहकीकात करना पुलिस का फर्ज है।"

पिछले दारोगा साहब होते तो और बात थी। रामलाल, शंकर खत्री और हमारे अपने लाला जी का उन से रसूख था। कसबे की इज्जत रखने के लिये बीसियों वारदातें दबा दी गयीं। दारोगा गुलजारीलाल खाने-पीने के शौकीन थे। लोग कहते थे इन का पेट बड़ा है लेकिन आंखों में

लिहाज भी था ।

यह दारोगा साहब ऐसे रूखे हैं कि किसी की हिम्मत उन से कुछ कहने की नहीं होती । घर के और नीयत के भी वैसे ही हैं । पहले दारोगा साहब के यहां दो भैंसे थीं, तीन नौकर थे और दो घोड़ियां । इन की बेगम खुद रोटी थाप लेती हैं । दूध के लिये बकरी और सवारी के लिये मजबूरन एक टट्टू है । हरदम वर्दी डांटे हैं जैसे दूसरा कोई कपड़ा है ही नहीं ।

लाचार हो लौट आये । रात भर नींद न आई । दारोगा को शक है कि पेंशन हथियाने के लिये बुढ़िया ने बहू को कुछ खिला दिया । लाश होशियारपुर आयगी । तहकीकात का मतलब है शव की चीर-फाड़ । बुढ़िया हिरासत में ले ली गई थी । बुढ़िया के प्रति सहानुभूति का विचार नहीं आया परन्तु गुरो के शव की चीर-फाड़ के विचार से मन बैठा जा रहा था । दिल की धड़कन सहसा बन्द हो जाने से उस की मृत्यु हो गई थी पर क्यों ? थानेदार साहब की तसल्ली के लिये क्या जवाब हो ?

रात भर गुरो की मृत्यु के बारे में दारोगा साहब को संतुष्ट कर सकने लायक कारण सोचता रहा । गुरो के हृदय की गति रुक कर उस की मृत्यु हो जाने की परिस्थितियों पर गौर करते समय, केवल नीचे गली में बत्तख के कुचले जाने और दूसरी बत्तख के अपने साथी के प्रणयाकुल और कामातुर हो प्राण दे देने की ही घटना दिखाई देती थी । वही क्षुद्र जीवों का व्यवहार ! सहसा मन में ख्याल आया—अपने जोड़े की मृत्यु के दुख से पक्षी प्राण दे, सती हो जाने की घटना ने गुरो के मन पर आघात किया और वह सती हो गई । एक सती के शव के निरादर की बात सोच मन तड़प उठा । शेष रात नींद न आई । सुबह उठ दारोगा को सारी परिस्थिति समझाने का निश्चय कर पड़ा रहा ।

दारोगा साहब रोजनामचा लिये बैठे थे । अंग्रेजी में बोलने से मिल

गई। गत संध्या की मृत्यु के विषय में बात शुरू की। अपनी बकरदाढ़ी को थामे दारोगा साहब प्रकट में ध्यान से मेरी बात सुन रहे थे और 'जी…जी' हुंकार भरते जाते थे।

बात पूरी होने पर उन्हों ने पूछा—"मास्टर साहब, आखिर आप मौत की वजह क्या बतायेंगे?"

गम्भीरता से उत्तर दिया—"विरह की पीड़ा…सदमए मुफ़ारकत।"

"मुआफ कीजिये," अपनी कुर्सी पर करवट बदल कर उन्हों ने उत्तर दिया, "पुलिस की दफा में ऐसी कोई चीज नहीं है।"

सती की मान-रक्षा के प्रयत्न में असफल हो, पुलिस की दफ़ा के सम्मुख सिर झुका कर मैं क्षुब्ध और असहाय लौट आया।

रिजक

चौथे पहर अदालत से लौट मिस्टर खन्ना ने दरवाज़े पर दस्तखत दी। भीतर से सांकल बन्द नहीं थी। दरवाजा खुल गया। कौतुहल से उन्होंने सोचा, कौन उसकी प्रतीक्षा में बैठा है! देखा तो बगल वाले सोफा पर स्वयं मिसेज खन्ना बठी थीं और उनके समीप कोई दूसरी भले घर की स्त्री। खन्ना का एक बरस का बालक इन अभ्यागत भले घर की स्त्री की गोद में था। महिलाओं में धीमे स्वर में बातचीत हो रही थी इसलिये पत्नी से चार आंखें हो जाने पर भी वे कुछ बोले नहीं।

हाथ की मिसिल को बैठक की तिपाई पर छोड़ खन्ना साथ के कमरे से भीतर जा, कपड़े बदलने लगे। सोच रहे थे, वे यह कौन नई सहेली इन की आज आई हैं। पहले कभी देखा हो, याद नहीं पड़ता। देखने में बुरी नहीं। उम्र इन से कुछ कम ही होगी। बदन लम्बा और लचीला। आंखें काफी बड़ी और रंग भी साफ। धोती या साड़ी पहनने का ढंग पढ़ी-लिखी जैसा। समानता के भाव से सोफा पर साथ बैठी है अवश्य पर एक हिचक सी दिखाई पड़ती है।

स्निग्धता और कोमलता की छाप जो खास ढंग के भोजन या कठिन श्रम न करने से, सौन्दर्य न रहने पर भी भले घर के लोगों के चेहरों पर बनी रहती है, अलबत्ता उतनी स्पष्ट न थी। धोती के किनारे में भी
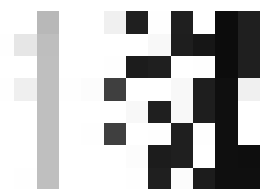
सौम्यता की अपेक्षा भड़क अधिक थी। यह सब बातें एक-एक करके न सोचने पर भी खन्ना के विचार में घूम गईं।

कुछ मिनिट बाद भीतर आ जब श्रीमती ने खन्ना के नाश्ते के लिये नींबू का शरबत जल्दी लाने के लिये नौकर को हिदायत की तो खन्ना ने प्रश्न किया—"यह नई सहेली कौन थी ?"

श्रीमती ने बताया—"उनके मकान के साथ की गली में चार रुपया महीने के जो क्वार्टर हैं, उन्हीं में वे लोग कुछ दिन पहले आये हैं। ऐसे ही पड़ोस में मिलने के लिये चली आई है। बेचारी ब्राह्मणी है।"

सामने रखे शरबत के गिलास की ओर न देख खन्ना ने शंका की—"रंग-ढंग तो चार रुपये महीने के क्वार्टर जैसा नहीं जान पड़ता।"

"औरत भली है।" श्रीमती ने विश्वास दिलाया, "बेचारे मुसीबत में हैं। तीन बच्चे हैं। मर्द बेचारा बेकार है। किसी के यहां काम करता था; मालिकों ने कह दिया, अब काम नहीं है। प्राइवेट नौकरी में यही तो खराबी होती है।"

बात को आगे चलाते हुये खन्ना ने पूछा—"तो फिर गुजारा कैसे चलता है ?"

"मायके में अच्छे खाते-पीते हैं, कुछ सहायता कर देते है।" श्रीमती ने उत्तर दिया।

शरबत का गिलास पीते हुए जाने क्या सोच कर खन्ना ने कह दिया—"मायके में सभी स्त्रियों के छत पर छप्पन बीघे पोदीना होता है।"

यह मजाक श्रीमती को बहुत प्रिय नहीं जान पड़ा। मामूली तौर पर झमक कर कहा—"तो होने दो, तुम्हें क्या पड़ी है ?"

× × ×

इसके बाद रविवार के दिन दोपहर के समय खन्ना भीतर की बैठक

में तख्त पर तकिये के सहारे लेटे कुछ पढ़ रहे थे और श्रीमती नीचे दरी पर बैठीं मशीन से मुन्ने के लिये नये फ्राक सी रही थीं। सहसा भीतर की ओर के दरवाजे का परदा हटा। पड़ोस की वही नई सहेली बेतकुल्लफी में चली आ रही थीं। वह सहसा खन्ना को देख लज्जा से सिमिट कर पीछे हट गई। इस सिमिट कर पीछे हट जाने में एक ऐसी झपट-सी थी कि खन्ना और श्रीमती दोनों ही की दृष्टि उस ओर गई। खन्ना के होठों पर मुस्कराहट फिर गई।

मशीन के हत्थे के पहिये को रोक, पर्दे की आड़ से दृष्टि उधर पहुंचा श्रीमती ने पुकारा—"आ जाओ न, यहीं आ जाओ...! क्या हर्ज है!" इस आग्रह से सहेली माथे का कपड़ा जरा आगे खिसका, दृष्टि नीचे किये भीतर आ गई। खन्ना की ओर पीठ कर, श्रीमती के बहुत समीप जाकर वे कुल-वधू के ढंग से बैठ गई। शील अवसर और स्थान के अनुसार होता है! किसी को पीठ दिखाना असभ्यता है परन्तु कुल-बधुओं का शील पुरुषों को पीठ दिखाने में ही है।

सहेली कुछ देर संकोचवश बिलकुल चुप बैठी रही। हाथ में थमी हुई पुस्तक पर आंख गड़ाये खन्ना के सतर्क कान मशीन की खड़बड़ में दबी जाती श्रीमती की और पड़ोसिन की बात-चीत की ओर थे। श्रीमती के कुछ पूछने और बोलने का शब्द अलबत्ता अवश्य सुनाई दिया परन्तु सहेली का कण्ठ-स्वर कैसा है, यह खन्ना नहीं जान पाये। वे प्रश्नों का उत्तर दे रही थी या तो केवल सिर हिला संकेतों द्वारा या फिर इतने धीमे स्वर में कि कोई शब्द खन्ना तक पहुंच भी पाया तो वह केवल सिलाई के सम्बन्ध में था।

कुछ देर बाद खन्ना को मालूम हुआ—वे मुस्करा देती हैं और एक सीमा तक जिन्दा-दिल हैं लेकिन बहुत सम्भल कर और बच-बच कर लगभग दो घण्टे बैठे रहने के बाद, विनय की एक लचक से उन्हों ने चलने
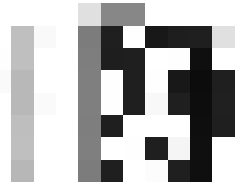
की आज्ञा मांगी ।

खन्ना को पीठ की ओर से यह लचक बहुत शील-पूर्ण नहीं जान पड़ी। असभ्यता भी उस में कुछ नहीं थी, थी केवल एक सजीवता या चुलबुलापन।

फिर आने का वायदा कर उन के चले जाने पर खन्ना श्रीमती से बोले—"सहेली तुम्हारी है जोर की···!"

परिहास की गुदगुदी से आंखों और होठों पर मुस्कराहट ला उन्हों ने पूछा—"कैसे···?"

"देखा नहीं," खन्ना ने हाथ की पुस्तक एक ओर रखते हुये कहा, "कमर नागिन सी बल खाती है !"

"पसन्द आ गई तुम्हें ?" मशीन को रोक, बखिया समाप्त कर तागा तोड़ते हुये श्रीमती ने परिहास में गहरे जाते हुये पूछा ।

उच्छृङ्खलता का आनन्द लेने के लिये तख्त पर पट लेट कर और तकिये को बाहों में दबाते हुये खन्ना ने उत्तर दिया—"अरे पसन्द क्या, बस देख लेते हैं और तपिश दिल की बुझा लेते हैं······अपने तो साधू आदमी हैं ।"

नया बखिया आरम्भ कर श्रीमती बोलीं—"क्या कहना; बड़े साधू हैं; तभी तो कमर के बल की परख है । पुरुषों को जाने क्या आदत होती है; यही सब देखा करते हैं ।" इस के बाद करुणा-द्रवित स्वर में बोलीं, "बेचारी दुखिया है । भले घर की लड़की है । तीन बच्चे हैं । मर्द है तो बेकार बैठा है । कहां तक मायके से लाकर कुनबा पाले ? सीना-परोना सीख ले या कुछ काम कर ले, तो भी कुछ हो । वैसे तो हिम्मती, होशियार है ।"

इस के बाद सहेली के नाम का पता खन्ना को चल गया । सब लोग उसे 'केवल की मां' कहकर पुकारते थे । थोड़ी-बहुत देर के लिये वह श्रीमती जी के यहां आकर सीने-पिरोने या घर के किसी दूसरे काम में

मदद कर जाती । मुन्ना को बहुत प्यार से खिलाती । प्राय: खन्ना से देखा-देखी हो जाती । रोज-रोज की बात हो जाने से माथे का कपड़ा आगे बढ़ाने की जरूरत न रही । सिर के काले घुंघराले बाल साड़ी के आंचल से खूब दीखते रहते । मुख पर मुस्कराहट भी रहने लगी और वह दो एक-बात बोलने भी लगी । श्रीमती जी के सामने ही खन्ना भी बात कर लेते—"तुम्हारे 'उन्हें' कोई काम-वाम कहीं मिला नहीं ?"

नजर ऊपर उठा कर वह उत्तर देती—"आप इतने बड़े आदमी हैं कहीं कुछ करें तब न ?" या इसी तरह की कोई और बात ।

'केवल की मां' श्रीमती को बहिन जी कह कर पुकारती थीं । साली-पन की गन्ध व्यवहार में आ जाने के कारण बहुत अधिक पर्दादारी और संकोच की जरूरत स्वयं ही न रही । ज्यों-ज्यों श्रीमती को 'केवल की मां' के संकट का हाल मालूम होता जाता, उन की सहानुभूति उस के प्रति बढ़ती जाती । एक सन्ध्या जब खन्ना और श्रीमती भोजन के लिये थाली पर बैठने जा रहे थे, वह जल्दी में आई । श्रीमती को एक ओर बुलाकर चुपके से कुछ बात कह कर चली गई ।

लौट कर श्रीमती ने करुणा-पूर्ण स्वर में कहा—"देखो न ! घर में दो पैसे नहीं कि तेल ला कर दिया जला सके । अन्धेरे में लड़के डर के मारे रो रहे हैं ।" बरफ में दबे हुये बनारस के लंगड़े आम चाकू से काटते हुये श्रीमती ने जिस विह्वल स्वर और मुद्रा में 'केवल की मां' का हाल कहा, उसे सुन कर तले हुये परवल से परांठे का ग्रास खन्ना को ऐसा जान पड़ा मानो मुंह में रेत भर गयी हो । मुन्ना को आम की एक फांक दे श्रीमती ने नौकर से बच्चे को दूसरी ओर ले जाने के लिये कहा । कटा हुआ आम खन्ना की थाली में रखते हुये उन्हों ने पूछा, "कैसा है ?"

ध्यान 'केवल की मां' की ओर लगा रहने से कुछ बेपरवाही से आम चख खन्ना ने उत्तर दिया—"अच्छा है ।"

यह समझ कर कि आम पर खर्चे पैसे व्यर्थ गये, श्रीमती बोली—लखनऊ में तो आम खाने का धर्म नहीं···मरे आधी ढेरी से तो कम आम देते ही नहीं। अब कोई गरीब आदमी डेढ़ रुपया रोज आम के लिये कैसे खर्च कर सकता है ? और फिर आम क्या आ रहे हैं पैसे बरबाद करना है; स्वाद तो है ही नहीं ?"

खन्ना के लिये आम का स्वाद बिलकुल नीरस हो गया। उन्होंने कहा—"सवा-डेढ़ रुपया जैसे कुछ होता ही नहीं ! किसी गरीब के बाल-बच्चों का दो दिन पेट भर सकता है।···उसके बच्चों के लिये दो-तीन आम दे देतीं !"

आम काटना जारी रख कर श्रीमती ने उत्तर दिया—"एक अठन्नी दे तो दी है। रुपया-दो रुपये पहले भी दो-चार बार ले आ चुकी है। ऐसे काम थोड़े ही चलता है। वह मरा—'केवल का बाप' कुछ करता ही नहीं। आठ-दस साल से बेकार है। यही, कहीं महीना-पन्द्रह दिन नौकरी करता है और फिर उससे कुछ होता नहीं। उसे नौकरी मिलती ही नहीं। ऐसे नालायक शादी क्यों कर लेते हैं···बच्चे क्यों पैदा करते हैं ?"

अविश्वास और विस्मय से खन्ना ने पूछा—"आठ-दस साल से गुजारा कैसे चलता है ?"

क्रोध में रहस्य का पुट मिलाते हुये श्रीमती ने उत्तर दिया—"अरे कुछ न पूछो इन लोगों की ! महरी और मेहतरानी जाने क्या-क्या कहती थीं। पहिले जिस मुहल्ले में रहते थे, वहां इतना गन्द फैला कि बदनामी के मारे रहना मुश्किल हो गया, तब यहां आये हैं। बदनामी पीछे-पीछे यहां भी आ रही है।"

आशंका से सिर उठा खन्ना बोला—"तो तुम परमेश्वर के लिये इस बीमारी को न पालो। अपनी इज्ज़त और हैसियत का तुम्हें कुछ खयाल है !"

श्रीमती कुछ तिनक कर बोलीं—"किसी का दिया तो खाते नहीं कि दबते फिरें। कोई दुखिया अपना सुख-दुख कहने आये तो उसे कैसे निकाल दें ? वह बेचारी गरीब है तो उसमें हजार ऐब हैं। दस बरस से उस निखट्टू और तीन बच्चों को पाल रही है सो नहीं दीखता ! करे क्या ? वैसे औरत बुरी नहीं पर जब तीन बच्चों को भूखा सिसकते देखे तो करे क्या ? बेचारी फूट-फूट कर रो रही थी अपने कर्मों को ? कमबख्त के लिये दुनिया में कोई काम ही नहीं रह गया। अरे मर भी जाता तो बेचारी की नाव एक तरफ लगती···उल्टे धौंस देता है। मैंने समझाया कि यह जिल्लत और बदनामी की जिन्दगी भी क्या है तो रो कर कहने लगी जो कहो करने को तैयार हूं।"

खन्ना तन्मयता से 'केवल की मां' की बात सोच रहे थे, बोले—"तो वेश्या और क्या होती है···बस जाहिर नहीं है।"

"हां तो फिर क्या करे ?" भोजन समाप्त कर थाली सरकाते हुये श्रीमती ने उत्तर दिया, "दुनिया भर में नंगा नाच नाचने से अच्छा ही है कि बच्चों को लेकर घर में बैठी तो है।"

खन्ना का स्वर कठोर हो गया—"तो यह लोग कुछ ऐसा ही काम क्यों नहीं कर लेते ? महरा और महरी भी तो आखिर गुजर करते ही हैं ?"

खन्ना के अविचार से कुछ खीझ श्रीमती बोलीं—"तुम कैसे यह सब कुछ कह डालते हो ! बीस-बिसवे ब्राह्मण हैं। महरे का काम करने लगेगा तो क्या थुक्का-फजीहत न होगी ? और फिर उससे ऐसा काम कोई करायेगा ही क्यों ? किसे आफत मोल लेनी है ?"

"मैंने उसे कहा, जीजी को बच्चा सम्भालने के लिये एक औरत की जरूरत है। भले आदमी हैं। उनके यहां दूसरे नोकर-चाकर हैं ही; बस बच्चे का काम है। तो कहने लगी—भई, और सब कुछ कर देंगे पर गूं-

मूत हम से कैसे धोया जायगा ? आखिर तो ब्राह्मण हैं, लोग क्या कहेंगे ? ···यों तो गुप्ता बाबू से कह कर रेड-क्राम में नर्स का काम सीखने लगे तो काम भी सीख जाय और बीस-पच्चीस रुपया वजीफा भी मिलने लगे ···पर जात को क्या करे ?"

खन्ना को क्रोध आ गया, बोले—"मरने दो सालों को। सब कुछ करके भी ब्राह्मणपना बाकी है।"

पति के क्रोध को व्यर्थ बताते हुये श्रीमती ने धैर्य से कहा—"नहीं, आज कल मशीनी कसीदे के किनारे की साड़ियों का बहुत रिवाज चल रहा है। अपनी सिंगार मशीन के लिये दो-चार पुर्जे खरीद लें। अपने काम भी आयेंगे और वह कढ़ाई पर साड़ियां ले आया करे। महीने में बीस पच्चीस साड़ियां मैं ले दूंगी, क्या बड़ी बात है ? उस रोज डाक्टरानी, महरोत्रा की बहू और न जाने कितनी ही औरतें कह रही थीं, कोई काढ़ने वाली नहीं मिलती। फिर किश्त पर अपनी मशीन ले लेगी। खयाल है, काम कर लेगी। अभी आंख का पानी नहीं मरा है।"

'केवल की मां' श्रीमती जी के यहां आती-जाती रहती। कभी घर से अपने कपड़े काट लाती और मशीन पर सी लेती। श्रीमती का कोई काम करती और बात-चीत भी चलती रहती। निस्संकोच के कारण खन्ना से दो टूक मज़ाक भी चलता रहा। कभी खन्ना कह देते- आज साड़ी ज़ोरदार पहने है। कभी खन्ना के दफ्तर में अकेले रहने पर और पानी का गिलास मांगने पर श्रीमती कह देतीं—जाओ, जल दे आओ।

आशंका और भय से आंखें फैला, कमर को तनिक हिला 'केवल की मां' कहती—हाय हमें डर लगता है और फिर गिलास ले दफ्तर में चली जाती।

संकोच नहीं रहा। 'केवल की मां' और श्रीमती को एतराज न होने पर मज़ाक में भी कोई भय न था। कोई विशेष अभिप्राय न होने पर

यों ही जरा मज़े के लिये खन्ना 'केवल की मां' के अकेले दफ्तर में या बैठक में आ जाने पर कह देते—"बैठिये जनाब !" और लहू में मामूली सी चिनचिनाहट हो जाती। जैसे बिहारी सतसई के दोहे पढ़ने से या फ़िल्म में नायक-नायिका को एकान्त में देखने से होता है।

कसे हुये ब्लाउज़ में उस के जोबन और गेहुआ रंग की ठोस बाहों पर नज़र दौड़ाने से एक स्फूर्ति-सी अनुभव होती। श्रीमती के अत्यन्त कोमल और खूब गोरे रंग में भी वह बात न थी—चाहे श्रीमती के जोबन का उफान उतर जाने के कारण हो या खन्ना के लिये उस में नवीनता न रहने के कारण। जैसे नित्य परांठे खाने वाले बाजरे की रोटी और अमिया की चटनी की ओर लपक जाता है।

× × ×

खन्ना ने एक दिन पूछा—"तुम्हारा मायके का नाम क्या है ?"

"हाय !" ठोड़ी झुका और आंखें फैला केवल की मां ने कहा, "मायके का नाम कहीं बोला जाता है ?"

खन्ना ने रूठ कर कहा—"हमें नहीं बताओगी, अच्छा न बताओ !"

मेज़ पर शरीर का बोझ डालते हुये वह बोली—"अच्छा बतायें ?... चम्पा। किसी से कहना नहीं।"

साड़ी और ब्लाउज़ की बात का जिक्र खन्ना ने किया। चम्पा ने कहा—"इतने बड़े वकील साहब कहलाते हैं, हमें तो कभी एक भी साड़ी नहीं ले दी। देखो, सब छन गई है !" अपनी साड़ी की ओर संकेत कर उस ने कहा।

"अच्छा ले देंगे।" खन्ना ने उत्तर दिया। वे जानते थे, श्रीमती कई धोतियां चम्पा को दे चुकी हैं पर शायद वह एक अच्छी, नई सी धोती चाहती है।
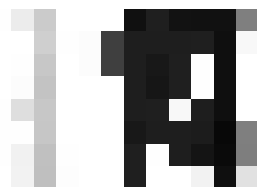
चम्पा का साहस बढ़ चुका था। खन्ना को अकेले में देख कभी वह रुपये दो-रुपये की फर्मायिश भी कर देती। खन्ना का विचार था, चम्पा को जो कुछ दिया जाय, वह श्रीमती ही दें ताकि मामला साफ रहे।

खन्ना ने कहा—"अपनी बहिन से क्यों नहीं कहती ?"

उन की कुर्सी के बिलकुल समीप आ चम्पा ने उत्तर दिया—"वाह, जो हम तुम से कह सकती हैं सो बीबी जी से थोड़े ही कह सकती हैं।" आंखों में आंखें डाल, उस के देखने का ढंग ऐसा था कि खन्ना मुस्कराये बिना न रह सका। उस ने देखा, खन्ना की आंखों में लाल डोरे फिर आये हैं और उस का कण्ठ कुछ बोझल हो गया है। सहसा वह बोली, "अब चलें, कोई आ जायगा, हमें डर लगता है।"

खन्ना बोला—"जरा ठहरो न !" वह ठहर गई और मेज के पास मंडराती रही। अपनी पहुंच के भीतर उस के इठलाने से खन्ना सोचने लगा, इस के शरीर के स्पर्श से प्राप्त होने वाली अनुभूति जाने कैसी होगी ?

उस की बांह पकड़ खन्ना ने कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। वह जैसे हड़बड़ा कर उस के कन्धे पर आ टिकी। खन्ना की बांह उस की अशिथिल कमर पर चली गई। खन्ना के लिये यह अनुभूति अत्यन्त रोमांचकारी थी जैसे उस का मस्तिष्क घूम सा गया। उसे समेटते हुये खन्ना ने पूछा—"चम्पा, हम से यों भागती क्यों हो ?"

चम्पा ने शिथिल हो जवाब दिया—"अरे हम क्या भागेंगे ! हम गरीब आदमी हैं, तुम बड़े आदमी हो !" खन्ना कुण्ठित हो चुप रह गया।

चम्पा ने मेज के नीचे फैले अपने पांव से खन्ना के पांव का अंगूठा दबा कर पूछा—"चुप क्यों हो गये ?"

जबरदस्ती मुस्कराने का यत्न कर खन्ना ने उत्तर दिया—"तुम कहो !"

चम्पा फिर उस की बगल में पहुंच गई और खन्ना की बांह उस की

कमर में परन्तु मन में उस के एक भीरुता समा रही थी। चम्पा ने कहा—"हमें दस रुपये का बड़ा जरूरी खर्च है! चाहे हम फिर फेर देंगे।"

किसी काम के लिये श्रीमती ने रुपये खन्ना को दे रखे थे। यों रुपये उनके अपने पास रहते न थे। उस समय दस का एक नोट निकाल कर दिये बिना खन्ना रह न सका।

रुपये का हिसाब समझाते समय खन्ना को कहना पड़ा, दस रुपये जाने कहां गिर गये या कहीं गलती से एक की जगह दो नोट दे दिये।

श्रीमती ने चिढ़ कर कहा—"रुपया, अठन्नी तो खोया ही करते थे अब नोट भी खोने लगे। ऐसी ही भारी आमदनी है न! तुम्हारी बेपरवाही की तो हद है!" बात टल गई।

× × ×

उस दिन था रविवार। खन्ना चाहते थे, बैठक में बैठना और श्रीमती कह रही थीं—"वहीं तख्त पर बैठो, दो जगह पंखा चलाने से लाभ?"

"एक मिसिल जरूरी देखनी है कल तारीख है।" कह कर खन्ना टाल गये और दफ्तर में जा बैठे।

चम्पा कभी गली के दरवाजे से और कभी सड़क से आती थी। सड़क के दरवाजे से वह आयी और सांकल लगा ली। फिर धीमे स्वर में पूछा—"बीबी जी कहां हैं?"

"भीतर।" खन्ना ने उत्तर दिया।

"यह दरवाजा मूंद दूं!" उसने पूछा और बहुत धीमे से मूंद दिया।

चम्पा सामने बैठ गई। खन्ना की नसों में रक्त का वेग तीव्र होने लगा। चम्पा घर पर अभी झगड़ा करके आ रही थी। कानों के बुन्दे उसने पच्चीस में बनिये के यहां रखाये थे, सूद समेत चालीस के हो गये थे। बनिया कहता था—दो दिन में छुड़ा नहीं लोगे तो हम बेच डालेंगे,
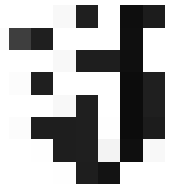
फिर मत कहना। खन्ना चाहे तो चालीस दे सकता था परन्तु कैसे ? अभी इतना जोर दे तो किस बात पर ?

खन्ना से सट कर खड़ी हो उसने कहा—"कहो, उस रोज तुम कहते थे आने को ?" खन्ना को मुग्ध भाव में निश्चल बैठे देख उसे उकसाने के लिये चम्पा ने कहा।

"तो फिर हम भीतर जांय बहिनजी के पास ?" चम्पा ने प्रश्न किया। नहीं, बैठो तो !" खन्ना ने उत्तर दिया।

बगल की कुर्सी पर चम्पा बैठ गई। कमर हिला, दायें हाथ की उंगली ठोढ़ी पर रख, नजर तिरछी कर उसने फिर पूछा—"कहो न ?"

उसकी ओर देखा खन्ना की आंखें झुक गयीं, मेज़ के नीचे अपने पांव से खन्ना का पांव गुदगुदा चम्पा ने कहा—"क्या हो तुम भी…?"

"हम बतायें, तुम औरत हो और हम मर्द हैं ?" खन्ना ने उत्तर दिया।

इस ललकार से सचेत हो खन्ना ने चम्पा की बांह जोर से दबाई। उसी समय धीमे से दरवाजा खुला और पर्दे की आड़ से श्रीमती ने झांका। झांक कर कुछ क्षण वे जैसे समझती रहीं और फिर लौट गईं।

× × ×

तीसरे दिन खन्ना के मकान के बगल की गली में चार रुपये वाले क्वार्टरों के सामने हाथ का ठेला खड़ा था। ठेले पर फटे वस्त्र और टूटे बक्सों की मामूली सी गृहस्थी लादी जा रही थी। पड़ोसी वितृष्णा से देख कर कह रहे थे—"लच्छन ही ऐसे हैं…किसी भले पड़ोस में गुजारा हो कैसे ?"

ऊपर दोमंजिले की खिड़की से देख कर महरी ने श्रीमती से कहा—"वह देखो, 'केवल की मां' सामान लिये चली जा रही है।"

श्रीमती उठी नहीं ! घृणा से उन्होंने कहा—"मरे कलमुंही…बहते

बिच्छू को जल से बाहर निकालो, वह पहले उंगली में ही डंक मारता है।"

एक हाथ में लालटेन, दूसरे में छोटे लड़के की उंगली थामे 'केवल की मां' बड़बड़ाती चली जा रही थी—"अरे कोई किसी का रिजक थोड़े ही छीन लेगा। भगवान सब के जुल्म देखते हैं।...उनकी धरती पर सब को जगह है। आदमी का बस चले तो कोई किसी को जीने थोड़े ही दे...।"
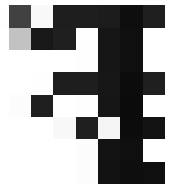
भगवान किसके ?

पिता जी धार्मिक प्रवृत्ति के थे। पढ़े-लिखे लोग उन्हें श्रद्धा से महाशय जी कह कर पुकारते। जिस ओर वे जाते, आदर-भाव से नमस्ते के लिये हाथ उठने लगते। ईश्वर में उनका विश्वास अखण्ड और अथाह था। प्रार्थना करते समय उनका चेहरा करुणामय और स्वर गद्गद् हो जाता। आर्यसमाज मन्दिर में प्रति रविवार को वे ही सामूहिक प्रार्थना के शब्द बोलते जाते, दूसरे सज्जन नेत्र मूंदे अपने मन में उस प्रार्थना का अनुमोदन कर भगवान से प्रार्थना कर लेते।

पिता जी की अभिलाषा थी, उनकी सन्तान भी ईश्वर की भक्त और सदाचारी बने। हम सभी बहिन-भाइयों को वे अपने साथ प्रति रविवार आर्यसमाज मन्दिर में ले जाते। वहां हम लोग भगवान की स्तुति के भजन गाते, हवन और प्रार्थना करते और धार्मिक उपदेश सुनते। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन घर पर भी सुबह-शाम संध्या और प्रार्थना के समय भी सब बहिन-भाई आंखें मूंदे, पालथी मारे संध्या और प्रार्थना में योग देते और भगवद्-भक्ति के भजन गाते।

पिताजी ने हम लोगों को 'आर्यगायन' और 'आर्य-संगीत रत्न-माला' के अनेक भजन कंठ करवा दिये थे। संध्या के बाद उनके स्वर में स्वर मिला हम सब लोग गाते—

ओम् जय जगदीश हरे,
पिता जय जगदीश हरे……
मैं मूरख, खल, कामी
कृपा करो भरता ! …इत्यादि

पिताजी नित्य प्रार्थना करते—हे करुणा के सागर ! हम पाप के कीचड़ में फंसे हुये अधम प्राणी हैं, आपको दया का ही सहारा है। हमारे मन में राग, द्वेष, लोभ, मत्सर सभी दुर्गुण भरे हुये हैं। हे दयामय, हमारे हृदय की अपवित्रता को दूर कर शुद्धता दीजिये ! हे परम पिता, हमारे घोर अपराधों को क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये…वे दोनों हाथ जोड़ मस्तक नवा देते और फिर---ओम् शान्ति ! शान्ति ! शान्ति ! कह कर आंखें खोलते।

पिता जी हमें उपदेश देते—सर्व शक्तिमान परमपिता परमात्मा से हमारा कोई भी अपराध छिपा नहीं रह सकता। वे माता, पिता से भी अधिक दयालु है। सच्चे हृदय से अपने अपराध के लिये उनसे क्षमा मांगने पर वे हमारे पापों को तुरन्त क्षमा कर देते हैं और हम पाप के दण्ड से बच सकते हैं।"

गम्भीर हो प्रार्थना में मन लगाये रहने का यत्न करने पर भी चित्त प्राय: भटक जाता। कभी गली में गुल्ली-डण्डा खेलते लड़के दिखाई देने लगते, कभी चौके में घुइयां बनाती माता जी दिखाई देने लगतीं, कभी पड़ोस की छत पर गुड़िया का खेल खेलती लड़कियां। पिता जी ने यह भी उपदेश दिया था कि मन में पाप होने पर चित्त भगवान की उपासना में नहीं लगता। हम मन को वश में करने का यत्न करते रहते परन्तु जाने कब और कैसे भगवान का ध्यान अंजली की अंगुलियों में से जल की भांति फिसल जाता।

अपने पापी मन को समझाते-समझाते विचार आया—मैं कौन-कौन

पाप करता हूं ? उस ग्यारह वर्ष की अवस्था में किसी भी पाप का रूप ध्यान में ठीक से न जंचता । जिन पापों के विषय में धर्मोपदेशों में जिक्र सुना था, उनमें से किसी का भी करना याद न आया । तब मन में एक क्षोभ सा हुआ । कोई भी तो ऐसा पाप नहीं जिसके लिये सच्चे हृदय से क्षमा मांग भगवान् का प्यारा बन सकूं । तब फिर भगवान् मुझ पर अनुग्रह किस बात के लिये करेंगे ? कैसे मैं बाल्मीकी ऋषि की भांति तपस्वी बन सकता हूं ? भगवान की दया और उनका प्रेम पाने के लिये, सच्चे हृदय से उनसे क्षमा मांगने के लिये एक पाप करना आवश्यक हो गया ।

उस दिन संध्या स्कूल से लौटते समय पंसारी की दूकान पर खड़ी भीड़ में छिप कर एक नारियल का टुकड़ा चुरा लिया । अपनी गली के समीप बाज़ार में मुहल्ले की लड़की को देख कुचेष्टा के संकेत से गालियां दीं ।

उस दिन सांझ को पिता जी के साथ बैठ संध्या करने के पश्चात् अपने पापों को याद किया । सच्चे पश्चाताप से आंखों में आंसू भर, गद्‌गद् कंठ से भगवान से प्रार्थना की—मैं खल और कामी हूं, मेरा हृदय पाप से पूर्ण है । हे परम पिता, मेरे अपराधों को क्षमा कर ! अपनी श्रद्धा और भक्ति का दान दीजिये ! अनुभव किया कि आज प्रार्थना करने से मुझे भी पिता जी के समान ही सन्तोष हुआ है । उस दिन भगवान् पर विश्वास कर अपने पाप क्षमा कराने का गर्व मन में ले रात भर गम्भीर बना रहा ।

सुबह-शाम प्रार्थना के बाद और भोजन से पहले पिता जी की आज्ञा से माता जी हमें पढ़ने बैठा देतीं । मैं रात की गम्भीरता के कारण बस्ता खोले चुपचाप पुस्तक से पाठ याद कर रहा था । छोटी बहिन की दृष्टि बस्ते में छिपे नारियल के टुकड़े पर पड़ गई । मीरा ने नारियल का टुकड़ा निकाल लिया । इस टुकड़े के लिये मीरा और केवल में झगड़ा हो गया ।
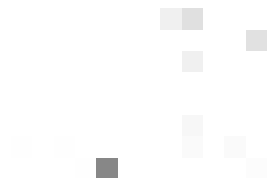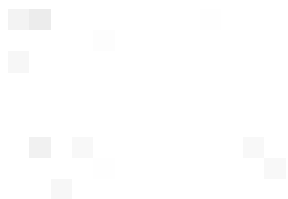
माता जी के घटनास्थल पर पहुंचने पर प्रश्न उठा—आखिर वह गरी का टुकड़ा आया कहां से ?

अपने अपराध के लिये भगवान् से क्षमा मांग ही चुका था। वह अपराध परम पिता परमात्मा पिछली संध्या क्षमा कर ही चुके थे। हाथ जोड़ अपना अपराध स्वीकार कर ही रहा था कि पिता जी भी बैठक से ऊपर आ गये।

गम्भीर चेहरे और क्रोध-पूर्ण आंखों से उन्हों ने मेरी चोरी का अपराध सुना। मेरे छोटे से गाल पर उन के लम्बे-चौड़े हाथ का एक थप्पड़ दायें से और दूसरा बायें से पड़ा। दोनों कान सुन्न हो गये परन्तु फिर भी खूब ऊंचे स्वर में उनके बोलने के कारण सुन सका—मैं चोर-बदमाश हूं और मुहल्ले की लड़कियों से छेड़खानी करता हूं, चोरी करता हूं। छोटे भाई को उन्होंने नीचे से अपना मोटा बेंत लाने की आज्ञा दी।

थप्पड़ से बचने के लिये दोनों कानों पर हाथ रख लिये। आंखों से आंसू बह रहे थे, पांव कांप रहे थे और मैं भगवान को गुहार रहा था—हे दयामय, कल कितने सच्चे और पश्चात्ताप पूर्ण हृदय से मैं अपने पाप के लिये क्षमा मांग चुका हूं। हे परम पिता, तुम मेरा अपराध क्षमा कर चुके हो। जल्दी आओ और अपने भक्त को बचाओ !

परन्तु भगवान के पहुंचने से पहले ही पिता जी की धमकी से कांपता हुआ छोटा भाई नीचे से मोटा बेंत ले कर आ पहुंचा। एक साथ दो अपराधों की सजा मिली। मैं प्रायः निष्प्राण हो फर्श पर बिछा दिया गया।

दिन भर रो-रो कर सूजी हुई आंखों से मैं बिसूरता रहा—भगवान् ने जब क्षमा कर दिया था तो पिता जी ने क्यों मारा ? क्या मेरा अपराध क्षमा हो जाने की बात भगवान् पिता जी से कहना भूल गये या भगवान् ने मेरा अपराध क्षमा ही नहीं किया था ? कितने निश्छल हृदय से भगवान्

के सामने अपना अपराध स्वीकार कर क्षमा क्यों नहीं हुआ ? और क्या भगवान् केवल पिता जी की ही बात मानते हैं, मेरी नहीं ?

तब निश्चय हो गया कि पिटने के लिये ही भगवान् ने हमें छोटा बनाया है। मैं प्रार्थना करने लगा——हे भगवान् शीघ्र ही मैं बड़ा हो कर बलवान हो जाऊं···ताकि मुझे कोई न पीट सके।

नमक हलाल

गलियारे, खेतों की मेड़, पनघट, गांव की गली जहां कहीं भी भदई निकल जाता, विनय से रसीली आंखों और मुस्कराहट से पांय लागन, राम-जुहार और जयरामजी बखेरता जाता। गांव के छोटे-छोटे रेंगते बच्चों से ले कर, लाठी टेक चलने वाली बुढ़िया तक से भदई का सख्य था। शील से वह ऊंची जात के सभी लोगों को मालिक-मालकिन पुकारता। जो इस श्रेणी में न आते वे उसके भैया, दद्दा, जीजी थे।

मथैयापुर और मथैयापुर की जिलेदारी में भदई का व्यक्तित्व दोहरा था। सब का भला और हंसोड़ भदई, मथैयापुर की जमींदारी कचहरी का गुड़ैत (सिपाही) था। उस के अपने सरल, मिलनसार व्यक्तित्व के पीछे उस के पद का आतंक था। घास का भारी गट्ठर सिर पर उठाये बलई की पासिन को यदि भदई खेत की मेढ़ पर हांफते देख पाये तो उस का बोझ अपने सिर पर उठा, गोहरन तक पहुंचा देता। उसी सांझ, जिलेदार साहब जमींदार की सीर पर काम के लिये बेगार में बलई की पासिन को झोंटा पकड़ घसीट लाने का हुक्म दे दें तो भदई रूखी आंखों से पासिन के सिर में धौल जमा, सचमुच उस का झोंटा पकड़ उसे खेत में ला खड़ी कर दे। उस समय पासिन के बिलखते बच्चों की चीख-पुकार भी भदई के कान में नहीं पड़ सकती थी।
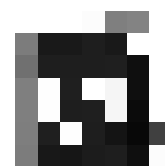
भदई का बाप चेतू भी अपनी जवानी में रियासत का गुड़ैत रहा था। दो रुपया माहवार तनख्वाह और 'सरकार' से चार बीघा की मुआफी थी। 'सरकार' ही उस के सर्वेसर्वा थे। भदई का बड़ा भाई जितई खेती-बारी में व्यस्त था। भदई को हल-बैल से काम न था। वह बाप की जगह जिलेदार के कोर्ट में गुड़ैती करने लगा। भौजाई के ताने सुन, घर छोड़ कर वह कोर्ट की चौपाल में ही रहने लगा और पूरा सिपाही बन गया।

राजा साहब को भदई का यौवन के कुन्दन से दमकता शरीर और भक्ति के अनुराग से भीजी आंखें कुछ ऐसी रुच गईं कि उन्हों ने उसे जिलेदार के थाने से महल की कचहरी में बुला लिया। गर्व से माथा ऊंचा किये, कन्धे पर लाठी धरे वह शरीर-रक्षक के रूप में राजा साहब की अर्दली में बना रहता।

कचहरी से उस की तनखवाह तीन रुपया माहवार बंध गई। पट्टा बदलाई या वसूली पर चार-छः आने पट्टे पीछे मिलता रहता। रियासत से इतनी तनखवाह कभी किसी प्यादे को न मिली थी परन्तु भदई जैसा सिपाही भी रियासत में कभी क्या हुआ होगा? उस के लिये भाई-बाप, धर्म-इमान सब सरकार का हुक्म था। राजा साहब की शक्ति का अस्तित्व मथैयापुर के हल्के में भदई के छरहरे कसरती बदन और ताम्बे के तार से गांठ-गांव बंधी लाठी के रूप में ही था। यों भदई हलके भर का गुलाम था परन्तु गुड़ैत के रूप में रियासत की सरकार की शक्ति का आतंक। ब्याह भदई का बारह बरस की आयु में ही हो गया था। जवानी की ड्योढ़ी के बाइस बरस पूरे होते-होते उस की छबीली बारिन, डेढ़ बरस के कल्लू को छोड़ आंखें मूंद गई। बप्पा और भौजाई के हजार ताने सुन कर भी भदई कल्लू को भौजाई के आंचल में सहेजने के लिये तैयार न हुआ। संसार में अपने एक-मात्र 'अपने' को, अपने कलेजे के टुकड़े को

वह किसी दूसरे की दया पर कैसे छोड़ देता ? कल्लू बाप के वात्सल्य और जमीदार के विशाल चौके के टुकड़ों पर पलता रहा।

भदई मुंह अंधेरे उठ धरती माता के चरन छू, बदन में तेल लगा कसरत करता। जब से उस ने रसौली रियासत के पहलवान मिर्जा को अखाड़े में धोबीपाट लगा पछाड़ दिया था, राजा साहब ने प्रसन्न हो उसे कोठी से आधा सेर भैंस का दूध बांध दिया था। गांव के ब्राह्मण-ठाकुरों के पट्ठे भदई के पुष्ठ, चिक्कण, दमकते शरीर को ईर्षा से देखते। उन्हें न कसरत के लिये अवसर था न आवश्यकता। खेती के श्रम से उन के शरीर हारे और टूटे रहते। जिन्हें पेट भर भोजन कठिनता से मिल पाये, उन के भोजन पचाने के लिये कसरत का सवाल कैसा ? वे ताना देते— भइया, जुताई के हारे बैल सांड़ों के मुकाबिले क्या ठहरेंगे ? इस ईर्षा का उत्तर भदई देता, जिसका खाते हैं, उस के लिये हथेली पर सिर रखे भी तो हमी घूमते हैं। उस का लाल लंगोट, बंधी हुई लाठी और दण्ड पेलने के गुम्मे तेल से भीजे रहते। इन्हीं का उसे शौक था।

महल की जवान चाकरनियां सटी हुई मिर्जई में उस के उभरे हुये चौड़े सीने और फंटे में कसी जांघों की झलक से गुदगुदी अनुभव कर, उस की उपेक्षा से कुंठित हो, तिर्छी निगाहों से ओंठ बिचका कुछ कह जातीं। भले घर की बहुओं की आंखें भी उसे देख सिरा जातीं। वे प्रयोजन-निष्प्रयोजन उसे किसी बहाने 'भइया' कहकर तृप्ति अनुभव कर लेतीं लेकिन भदई का ध्यान उस ओर था ही नहीं। लंगोट का सच्चा वह तृप्ति अनुभव करता था अपने संचित, सुरक्षित यौवन की शक्ति के मद में। बोली-ठोली और टुचकारी का उत्तर वह गाली और उपेक्षा से देता। उसे अनुराग था केवल 'सरकार' के हुक्म से।

× × ×

फागुन बीत गया परन्तु होली का मद अभी हवा में शेष था। पृथ्वी पर बावली हवा की ठेलमठेल से क्षुब्ध हो भूसे और धूल के कण अधर में लटक रहे थे। क्षितिज पर फैली अमराइयों की ओट से छन कर आती सूर्य की किरणों में वे सब सुनहले हो रहे थे। मड़ाई और ओसाई के श्रम से चूर किसान सफलता के उत्साह में थकावट अनुभव न कर अपने श्रम का फल बटोरने में लगे थे।

राजा साहब मथैयापुर कार में लखनऊ से लौट रहे थे। दुरई तक जरनैली सड़क है और आगे पांच मील पलना और कमछा की राह कच्चे में होकर रियासत की कोठी तक जाना होता है।

राजा साहब की कार कमछा के खलिहानों के पड़ोस से गुजर रही थी। ढोलक की गमक के साथ नारी कण्ठ का आकर्षक स्वर सुन उन्होंने गाड़ी की खिड़की के कांच से झांका। कुछ कांच पर जमी धूल और कुछ गाड़ी की रफ्तार, स्पष्ट कुछ दिखाई नहीं दिया। इमली के पेड़ के नीचे गोल बांध कर खड़े लोगों की भीड़ में से एक गोरी-गोरी सी, छरहरी औरत की झलक दिखाई दी और गाड़ी निकल गई।

ड्राइवर ने घूमकर कहा—"हुजूर, यही है वह बेड़िनी नसिया!"

जल्दी में राजा साहब जो कुछ देख पाये उस से उन की आंखों में चमक आ गई। मुस्कराहट दबा कर बोले—"चीज तो बुरी नहीं!"

"इस में क्या शक, हुजूर की परख का क्या कहना!" विनय की मुस्कराहट से झुक कर मैनेजर ने समर्थन किया।

आंखें सड़क की ओर कर ड्राइवर कहता गया—"गरीब परवर, खादिम ने तो अर्ज किया ही था लेकिन देखे बिना अन्दाज मुश्किल था। सूरत क्या है, चेहरे का रंग जैसे सोना-चम्पा? सरकार तस्वीर, समझिये! और गला है जैसे मस्ती में आई कोयल! गरीब परवर, बीस की भी नहीं होगी। ऐसी कच्ची जैसे लखनऊ की ककड़ी की बतिया। ईमान की
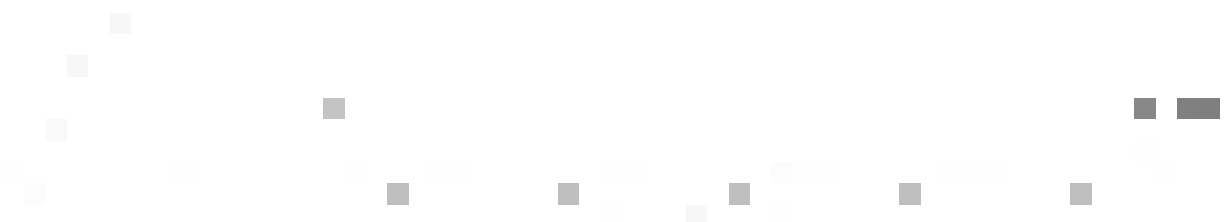
कसम सरकार, जैसे बहिश्त से परी उतर आई हो पर शोख भी ऐसी है कि बात-बात में अंगूठा दिखाती है।"

राजा साहब की दृष्टि आकर्षित करने के लिये सीट पर कुछ आगे झुक मैनेजर साहब बोले—"गरीब परवर, शहर के रंग तो हुजूर की बदौलत रोज ही देखते हैं। उन पिंजरों की मैनाओं की चीखें तो रोज ही सुनते हैं। आज यह जंगल की कुंवारी फुदकती हुई हुजूर के कदमों में हाजिर हुई है। इसे भी देखा जाय, हर्ज क्या है ? गरीब परवर, दिल्लगी ही रहेगी !"

जिलेदार की गढ़ी के समीप से जाती हुई मोटर पल भर को थम गई। भोंपू की आवाज सुन, जिलेदार जमीन तक झुक सलाम करते हुये दौड़े चले आ रहे थे। आगे बढ़ मैनेजर साहब ने उन से बात की। जिलेदार ने सिर झुका राजा साहब के सुन सकने लायक स्वर में विश्वास दिलाया—"हुजूर के गुलाम हैं। अन्नदाता के हुक्म से सब ठीक हो जायगा।"

अगली सांझ कोठी पर नसिया का मुजरा हुआ। गैस की रोशनी थी। नसिया भरसक बन-संवर कर आई थी। पीली बुंदकी का लाल लहंगा, गोटा टंकी काली ओढ़नी और गैस के उजाले में काली दिखाई पड़ती हरी मखमली अंगिया में आधे कटे नारियल से दबाये।

नसिया के मर्द ने घुटने के नीचे दबी ढोलक पर थाप दी। नसिया आरसी पहने अंगूठे और तर्जनी से ओढ़नी उठा-उठा ठुमकने लगी। ढोलक की गति द्रुत होने लगी और उस के साथ नसिया के चंचल पांव। वह चहकती और नाचने लगी। नाच में छतरी की भांति फैल गये लहंगे की छाया में टखनों पर बंधे घुंघरू और पायजेबों के ऊपर खरादे हुये पाये-सी सुडौल गोरी पिंडलियां थिरक रही थीं। द्रुत-गति से उस के घूम जाने से ओढ़नी में हवा भर सीने का उभार आता। उस की गोरी-गोरी बाहें और काली वेणी सफेद और काले सांपों की भांति लहरा रही थीं। राजा

साहब की बगल में बैठे मैनेजर उचक-उचक कर उन के कान में कुछ कह देते । राजा साहब के नेत्र कभी फैल जाते और कभी अधमुंदे से रह जाते। चेहरे पर एक दबी-सी मुस्कराहट आकर विलीन हो जाती ।

नसिया सांस लेने को पल भर थमी । मैनेजर साहब कुछ पायें कि इस से पहले ही नसिया दूसरे नाच की धुन पर ठुमकने लगी । भाव बता वह गाने लगी—"चितै दें हमरी ओर, कसक मिटजै रे……।
हाय रे मोरे सइयां……।"

नसिया जो कुछ गा रही थी उस में कला का परिष्कार न था । मन्द और कोमल का उसे ज्ञान न था । वह अन्तरा और स्थायी का भेद भी न जानती थी । वह केवल अनावृत्त वासना का संकेत था । वह सीधी-सादी गांव की बोली में ग्राम्य-बधू की उत्तेजक कामना की बात कह रही थी जो 'पुरुष' को पुकारती है, उस के लिये छटपटाती है । नसिया का भाव-दर्शन भी परिष्कृत संकेत मात्र नहीं, उग्र था । अपनी नम्रता के कारण वह प्रबल और अदम्य हो रहा था । समीप बैठे मैनेजर और पीठ पीछे खड़े ड्राइवर की वाह-वाह में योग देने के लिये राजा साहब भी मुस्करा देते । एक अशर्फी मंगा कर उन्हों ने नसिया को अपने हाथ से भेंट की ।

मुजरा समाप्त होने पर नसिया अपने मर्द और देवर के साथ चलने को हुई । मैनेजर साहब अलग अकेले में राजा साहब से बात कर रहे थे । ड्राइवर को पुकार कर उन्हों ने कुछ समझाया । ड्राइवर लपक कर नसिया और उसके मर्द के पास आकर बोला—"कहां है तुम्हारा डेरा, कमछा में ? अब इतनी अबेर इतनी दूर क्या जाओगे ! कोस डेढ़ से कम क्या होगा ? उजाड़ में अकेले जाओगे ! यहीं पड़े रहो, चटाई-चादरा मिल जायगा ।"

"नहीं अन्नदाता,…हुकुम हो, जायंगे !" नसिया के मर्द मनसा ने

कहा, "डेरे पर दूसरे लोग राह देखते होंगे।"

ड्राइवर ने फिर समझाया—"अरे उजाड़ बियाबान है। इस हल्के के लोग बड़े सरकश-बदमाश हैं। कहीं कुछ और आफत सिर लो! अंटी में सोना लेकर ऐसे रात-बिरात नहीं चला जाता।"

अपनी दो हाथ की लाठी छू मनसा ने उत्तर दिया—"अरे मालिक की दुआ से देश-विदेश सब ऐसे ही फिरते हैं।"

ड्राइवर के बहुत समझाने से भी मनसा रात कोठी पर बिता देने के लिये तैयार नहीं हुआ। दो-चार अशर्फी और पा जाने की आशा पर भी नहीं बल्कि आशंका से मुंह बाये खड़े अपने भाई को धमका कर उसने कहा—"चलता है कि नहीं, मुंह बाये क्या देख रहा है?" हाथ में थमी लठिया से राह दिखा उसने नसिया को भी डांट दिया, "चलती क्यों नहीं री!"

कल्लू नसिया का नाच देखते-देखते नींद में लुढ़क गया था। भदई उसे गोद में उठा अपनी कोठरी की ओर ले गया। सांकल चढ़ा सामने पुआल की चटाई पर उसने लड़के को कथरी ओढ़ा सुला दिया। दो पहर रात बीत चुकी थी। अष्टमी का चन्द्रमा पश्चिम ओर की अमराइयों पर झुक गया था। पछवा बयार बाधा-रहित मैदानों को पार कर नंगे खेतों में इठलाती, पेड़ों से मरमराहट और सूखी झाड़ियों की गूंज लिये बही चली आ रही थी परन्तु भदई चटाई पर उघाड़े बदन बैठा नींद की तैयारी में दिन की अन्तिम सुरती हथेली पर मल रहा था कि होंठ में दबा कर लेट जाय। छीजती चांदनी में पीली चटाई पर उसके शरीर की कृष्ण रेखायें पीतल की पटिया पर बने ताम्बे की मूर्ति-सी जान पड़ रही थीं।

गप्पू कहार का बोल सुनाई दिया—"भइया भदई हो! मनीजर साहब कोठी पै बुलाइन हैं!"

अप्रत्याशित बुलाहट की बात सुन भदई ने समझ पाने के लिये दृष्टि

उस की ओर उठा प्रश्न किया—"हूं, लेओ, सुरती लेओ !" संवारी हुई सुरती की चुटकी हथेली पर गप्पू की ओर बढ़ा शेष अपने निचले होंठ में दाब ली। अपना लाल लंगोट गले में लपेट, चदरा कन्धे पर रख, लाठी हाथ में ले भदई गप्पू के साथ कोठी की ओर चल दिया।

मैनेजर साहब कोठी के पूरब की ओर फैली छांव में खड़े ड्राइवर से बात कर रहे थे। उन से कुछ दूर, कटहल की चांदनी में चमकती पत्तियों की छांव में बख्तावर और जगन पर चदरा लपेटे कांख में लाठी की टेक लिये खड़े थे। चार कदम से ही भदई ने झुककर मैनेजर साहब को सलाम किया।

आत्मीयता के स्वर में मैनेजर साहब ने सलाम स्वीकार किया—"कहां भदई, सावन जात रहे का ? हियां आओ ! …देखो…कितने सरकस लोग हैं…," परेशानी के भाव से उन्हों ने गाली दे कहा और समर्थन के लिये ड्राइवर को सम्बोधन किया, "क्यों रहमत खां ?"

"अरे हुजूर, क्या अर्ज करें ?" ड्राइवर ने उत्तर दिया, "इतना समझाया पर जैसे 'सरकार' को कुछ गिनते ही नहीं। सरकार खुद ही तो मुंह लगाये हैं। अमा, तुम टके-टके बिकाती हो, तुम्हें मिजाज किस बात का ? सरकार ने अशरफी दिला दी सो दिमाग बिगड़ गया। कहते रात भर ठहरो यहां। तब सुबह पसेरी भर अनाज दिला देते। कम जात लोग ऐसे ही ठीक रहते हैं।"

शरीर को ढीला कर मैनेजर साहब ने फिर भदई की ओर ध्यान दिया—"भैया भदई, 'सरकार' को तुम पर बहुत भरोसा है। कितना मानते हैं… क्यों ?" मैनेजर ने घूम कर ड्राइवर को समर्थन के लिये संकेत किया। उस ने हामी भरा, "और क्या ?"

मैनेजर साहब कहते गये—"लोग ऐसी सरकसी करने लगें तो रियासत दो दिन नहीं टिक सकती। अरे हां, कल रियाया कहने लगे, हम 'सरकार'

को कुछ गिनते ही नहीं तो यह रियासत और अमला कहां रह जाय ?… कहो !" उन्हों ने ठोड़ी उचका भदई से पूछा।

"जो हुकुम होय हुजूर, सरकार का नमक खाते हैं" भदई ने निश्शंक उत्तर दिया।

मैनेजर साहब एक कदम और समीप सरक आये—"रहमत भी जा रहे हैं। जगन, बख्तावर और गप्पू हैं। जैसे हो…" गाली दे उन्हों ने कहा, "…साली को उठा लाओ ! फिर हम देख लेंगे, समझे !"

माथा झुका भदई ने विश्वास दिलाया—"धर्मौतार, जो हुकुम !"

चन्द्रमा कुछ और झुक गया परन्तु अभी चांदनी थी। चारों आदमी लाठियां कंधे पर रखे ड्राइवर के साथ तेज चाल से चल दिये। चाल की तेजी से दम न फूल जाय इसलिये धीमे होने के लिये जगन बात करने लगा—"…अरे ससुरन का बिछाय देय ! त्योरस के साल जब कमछा के बिनै ठाकुर की ऊख की पट्टी मथुरिया के नाम बदली गई, ठाकुर बहुत बिगड़े। बेचारे मथुरिया दो सौ रुपया नजराना सरकार का दियेन। जिलेदार साहब का खुश कियेन। दो रुपिया हमहूं पायेन। बिनै ठाकुर दस बरस ते पट्टा का जोतत रहे। दो फसल और कर ले, पुस्तैनी हो जाय। दोनो भैया कहन लगे—खेत नहीं छोड़ेंगे चाहे खून बह जाय ! जबरन हम खेत में जा पहुंचे। जिलादार साहब हम का कहेन—भैया जगन, जाकर पटिया देखो ! हम बिसना, बिन्धे और गप्पू का ले गये। ठाकुर हमें गरियान लगे। हम कहेन—दद्दा हमहू दो रोटी खाइत है, अस न बको ! …गाली का पुट दे उसने कहा—बहिन-बिटिया गरियान लागे। दोनों हाथन ते लट्ठ लेके हम पिल परेन ! सब का बिछाह के धर दीन। लागे पिल्ला से चिचियान ! उन के भैया 'राम' बोल गये ! कहेन…हम रियासत के गुड़ैत…।

"हवलदार साहब हमका हथकड़ी दे के थाना मां ले गये। हम कहेन—

अब जो होय ! मालिक का नमक खावा है तो उन के हुकुम से जो होय ! 'सरकार' का परताप है कि तीसरे दिन---मूंछ छू उस ने कहा, घर चले आयेन । बिनै ठाकुर···का सबु जोर लगाते रहे । अब चाहे 'सरकार' दारोगा साहब को पांच-सौ पूजे हो या हजार ! अपनी जान का भारी मूल्य चुकाये जाने के अभिमान में उस की गर्दन ऊंची हो गई । जगन की बात समाप्त हुई तो ड्राइवर ने किस्सा छेड़ा—लखनऊ में सड़क पर मजे-मजे जा रहे थे । साला सिपाही कहने लगा, बायें चलो ! हमने कहा—चुप बे ! साला बकने लगा । गाड़ी से उतर एक झांपड़ दिया साले को ! हवलदार साहब तारेगिनने लगे ।"

वे लोग कमछा के गोयड़ (पड़ोस) खेतों में पहुंचे तो गांव के कुत्ते भौंकने लगे । जगन ने कुत्तों को गाली दी । बख्तावर ने समझाया—"बयार इधर से है । मानस-गंध पा कुत्ते चौंक रहे हैं । उधर उत्तर पीपल के परे से होकर निकल चलो !"

नाच से पहले राजा साहब के लिये विलायती की बोतल खुली थी । राजा ड्राइवर को मानते थे सो एक गिलसिया उसे भी भिजवा दी थी । चस्का लगा तो ड्राइवर ऊपर से देसी और चढ़ा गया । वह नशे के जोम में था । बोला—"क्यों निकल चलें उधर से ? क्या दबैल हैं किसी के ? सीधे चलो जी, देखें कौन······आता है ! एक हाथ से साले का भेजा निकाल दूं !"

"अरे मालिक, झमेले से क्या फायदा ?" खुशामद से भदई ने कहा और वे लोग पीपल का चक्कर दे निकल गये ।

जोहड़ के समीप बेड़ियों के डेरे की सिरकियां चांद छिप जाने के पश्चात् धुंधली सी दिखाई पड़ रही थीं । बख्तावर के कहने से वे लोग चक्कर दे उत्तर-पूरब से सिरकियों की ओर बढ़े कि कुत्ते मानस-गंध पा चौंकें नहीं । आहट बचाने के लिये यह लोग पंजों पर बोझ दे चल रहे

थे। बखतावर ने ड्राइवर को भी जूते उतार हाथ में ले लेने के लिये सलाह दी। उस ने गाली दे कहा—"डरते हैं क्या ?"

सिरकियां अभी कुछ कदम दूर थीं कि एक कुत्ता गुर्रा उठा। उस गुर्राहट के साथ ही दूसरे कुत्ते जोर से भौंकने लगे। पुकार सुनाई दी—"को है ?" सिरकियों के नीचे दिखाई दिया कि एक आदमी झपट कर लेटे से उठ बैठा है।

भदई के कान में बखतावर ने धीरे से कहा—"जाग गये......झपट के लो !"

जगन कुछ झिझका परन्तु भदई और बखतावर को झपटते देख रुका नहीं। ड्राइवर भी जूते की उलझन से जरा पीछे-पीछे रह गाली देता हुआ बढ़ चला।

मनसा लाठी ले खड़ा हो गया और चिल्लाने लगा—"ओ खित्तू उठ ! चोर ! चोर ! चोर !" भदई और बखतावर ने मनसा और खित्तू को गिरा दिया होता परन्तु उसके कुत्ते आगे आकर उलझ गये। एक बड़े से काले कुत्ते ने भदई की पिंडली में दांत गड़ा दिये। बखतावर की लाठी से कुत्ते की कमर टूट जाने पर चिल्लाने के लिये उसका मुंह खुला तो टांग छूटी। लाठियां कड़ाकड़ बजने लगीं। स्त्रियों के कण्ठ की आर्त चिल्लाहट भी सुनाई पड़ रही थी। नसिया और उस की ननद भी बांस ले लड़ने को आगे बढ़ आईं। वे चिल्लाती भी जाती थीं—"हाय रे, मार डाला रे !"

मनसा का बूढ़ा बाप कुल्हाड़ी ले आगे बढ़ आया।

भदई उछल-उछल कर पैंतरे से लाठी चला रहा था। पहले मनसा और फिर खित्तू गिर पड़े। बूढ़ा भी दोनों हाथों से सिर थाम बैठ गया। नसिया की पीठ पर एक लाठी जमा ड्राइवर ने कहा—"यही है साली पकड़ लो...को !"

भदई ने नसिया को गर्दन से पकड़ उस के हाथ से बांस छीन फेंक दिया। वह चिल्लाने लगी। ड्राइवर ने उस का आंचल उस के मुंह में ठूंस दिया। भदई उसे कन्धे पर उठा ले चला। वह छटपटा कर हाथ-पांव चलाती भदई का सिर और गर्दन नोचती जा रही थी। भदई की पिंडली में कुत्ते के दांत लगने से लगातार खून जा रहा था परन्तु वह रुका नहीं। उस के पीछे-पीछे गाली बकता, नसिया को चुप रहने के लिये धमकाता ड्राइवर चला आ रहा था। बख्तावर के कन्धे पर भीतरी गहरी चोट बैठी थी। गप्पू और जगन के यों ही मामूली से खरोंचे लगे थे। वे बख्तावर को सहारा दे लिये चले आ रहे थे।

रात को तीसरा पहर बीत चांद छिप चुका था। चांदनी की शीतलता का स्थान अन्धकार की भयंकरता ने ले लिया। कोठी के बराम्दे में और भी घने अंधकार में केवल मैनेजर साहब के सुलगते सिगरेट का अंगारा दिखाई दे रहा था। भदई ने अधमरी-सी, शिथिल, क्लान्त नसिया मैनेजर साहब के सामने रख कर, माथे का पसीना हाथ से पोंछ कर फर्श पर गिरा दिया। मैनेजर साहब के पुकारने से लालटेन आई। नसिया को भीतर कमरे में पहुंचा मुंह का कपड़ा निकाल दिया गया।

नाच के बाद नसिया को न पा राजा साहब का मन असफलता के अपमान की अनुभूति से चुटिया गया था। व्यर्थता और उदासी अनुभव होने लगी। ग्लानि दूर करने के लिये थोड़ी और पीने की सलाह मैनेजर ने दी। उसी जोम में राजासाहब ने गाली देकर कहा था—"···को पकड़ लाओ!"

नसिया के आने तक वे आवेश और उन्माद में सोफे से कुर्सी और कुर्सी से पलंग पर उछलते रहे। जिस समय नुची-खुची, मसली नसिया उन के सामने पेश की गई, आवेश का ज्वार फिर ग्लानि की दल-दल में परिणत हो चुका था। राजा साहब ने गाली देकर उस से पूछा—"बड़ा

मिज़ाज है ?"

उस अवस्था में भी बदहवास नसिया ने गाली का उत्तर गाली से दे, छूने वाले का कलेजा चीर, खून पी जाने की धमकी दी। राजा साहब के क्रोध की निस्तेज होती अग्नि पर पेट्रोल पड़ गया—"अभी इस···हराम-जादी को हमारे सामने कुत्तों से ··! बुलाओ साले जगन को! रहमत को भी बुलाओ! अभी यहीं हमारे सामने ·! ऐसे मिजाज हैं···!" वे चिल्ला कर दांत किटकिटाने लगे।

जगन और रहमान के आने पर राजा साहब ने नसिया को मजा चखाने के लिये दोनों को एक-एक बोतल देसी शराब देने का हुकुम दिया। हांफती हुई नसिया को दोनों बाहों से थाम वे लोग खींच ले गये।

खित्तू और उस का बूढ़ा बाप रोते हुये बिसतिया के थाने में पहुंचे। अपने आदमी को जखमी कर उस की औरत भगा ले जाने की दुहाई उन्होंने थानेदार साहब के आगे दी। भाग्य से सरकिल इंस्पेक्टर साहब अकस्मात निरीक्षण (Surprise Visit) के लिये उसी दिन तड़के ही आ विराजमान हुये थे।

हवलदार साहब ने फरियादियों को डपट कर थाने के बाहर प्रतीक्षा करने के लिये कह दिया था। वे अपने यहां की परिस्थिति जानते थे। रियासत के लिये लिहाज था। सरकिल साह्रेब छूट्टी पा दारोगा साहब जो मुनासिब समझते, करते। सरकिल साहब ने खबर पा, फरियादियों को भीतर बुलाये जाने का हुक्म दिया। संगीन मामले में हवलदार की उपेक्षा ने उन के मन में सन्देह उत्पन्न किया। मामले की तहकीकात के लिये वे दारोगा के साथ स्वयं घटना-स्थल पर आये। इस के बाद भोजन और विश्राम के लिये थाने पर लौटे बिना सीधे जमींदार साहब की कोठी पर पहुंचे।

जिस समय सरकिल साहब घटनास्थल पर तहकीकात कर रहे थे,
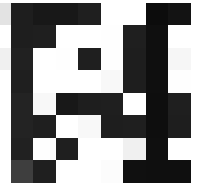
हल्के में उन के अकस्मात पधार जाने का समाचार राजा साहब की कोठी पर पहुंच गया। कोठी पर नसिया का कुछ पता न चला। तिस पर भी सरकिल साहब ने भदई और बख्तावर को उन की चोटों के प्रमाण के आधार पर, उन के घटना से सम्बन्धित होने के सन्देह में ले लिया। जगन और नसिया दोनों का ही कुछ पता न चला।

मनसा को चोट गहरी लगी थी। वह उसी दिन संध्या तक दम तोड़ गया। सरकिल साहब के हुक्म से उस की लाश जिला हस्पताल में सिविल सर्जन के निरीक्षण के लिये भेज दी गई। आगे तहकीकात और रिपोर्ट की हिदायत कर सरकिल साहब दौरे पर चल दिये।

दो महीने तक नसिया की खोज होती रही! अदालत ने पुलिस की खोज के लिये अवसर (Remand) दिया। भदई और बख्तावर जिला जेल की हवालात में सड़ते रहे। मनसा के बूढ़े बाप, भाई और ननद को हर तीसरे दिन थाने में हाजिर होने का हुक्म हो जाता। उन का आदमी मारा गया, घर की औरत छिन गई सो तो हुआ लेकिन हर तीसरे दिन थाने में दिन भर की हाजिरी में वे रोजी से भी गये। अपने ऊपर हुये अत्याचार का बदला ले पाने की प्रतिहिंसा के बदले वे अपनी जान बचा पाने के लिये व्याकुल होने लगे।

दारोगा साहब प्राय: कोठी पर आते-जाते और उन की खातिर होती। मामले के बारे में राजा साहब को चिन्तित देख वे आश्वासन देते—इंशाअल्ला सब ठीक हो जायेगा। आप का नमक गुलाम की नस-नस में भीज रहा है, आप को फिक्र किस बात की है?

दो मास से अधिक समय खोज-पड़ताल के लिये देना अदालत ने स्वीकार न किया। आखिर मामला अदालत में पेश हुआ तो इस रूप में—

मरहूम मनसा की औरत मफरूर 'नसिया' रियासत के नौकर जगन से फंसी थी। मनसा औरत पर कड़ी चौकसी रखता था। जिस रात राजा

साहब के नौकर ने नसिया का नाच कराया, जगन अपने दोस्तों को ले रात के तीसरे पहर नसिया को जबरन लिवा लाने के लिये गया। तरफैन में मार-पीट हुई और नसिया जगन के साथ भाग गई।

राजा साहब की प्रजापालकता के कारण अभियुक्तों के लिये सफाई के वकील खड़े किये गये। मनसा के बाप और भाई के पास वकील खड़ा करने के लिये रकम और हौंसला न था। वे किसी तरह रोज-रोज के सम्मनों से जान बचाना चाहते थे। वे अदालत में—'हां हुजूर' कह चुप हो गये।

अभियुक्तों के पहचाने जाने का अवसर आया तो दूसरे लोगों में मिला कर खड़े किये बख्तावर को फरियादी पहचान नहीं पाये। भदई के जग जाने सुडौल डील और पिंडली में लगे कुत्ते के दांत ने उस पर अपराध में भाग लेने की मोहर लगा दी।

सिविल सर्जन साहब की रिपोर्ट थी कि मनसा की मृत्यु लाठियों की चोट से हुई थी। जज साहब की दृष्टि में आक्रमणकारी भयंकर अत्याचारी और आततायी प्रमाणित हुये, जो कत्ल करके दूसरे आदमी की औरत को भगाने के लिये गये थे। फरार हो गये अभियुक्त जगन के अपराध का दण्ड भी शायद उन्होंने गिरफ्तार हो जाने वाले अपराधियों को ही देना उचित समझा। जज साहब को असंतोष था कि पुलिस ने गवाही पहुंचाने और खोज में उतनी तत्परता से काम नहीं लिया जितना कि ऐसे संगीन मामले में उचित था परन्तु अपराध प्रमाणित हो जाने में सन्देह न था। सन्देह रह गया था केवल बख्तावर के व्यक्तित्व के विषय में। उसे फरियादी गवाह पहचान नहीं पाये। इस सन्देह की छुरी ने बख्तावर के गले में पड़े न्याय की फांसी के फन्दे को काट दिया। वह सर्वथा मुक्त हो गया। भदई के लिये केवल एक ही दण्ड था—फांसी!

× × ×

भदई जिला जेल की फांसी की कोठरी में बन्द था । एक दिन मैनेजर साहब उसे दर्शन देने आये । भदई की प्राण-रक्षा के लिये राजा साहब की चिन्ता का आश्वासन दिलाया और विश्वास दिलाया—"हजार, लाख जो भी खर्च हो जाय हाईकोर्ट में मुकदमा लड़ कर उसे छुड़ाने में कसर न छोड़ी जायगी ।"

भदई जेल की रूखी-सूखी, कच्ची-जली खाकर भी अपनी कसरत पूरी कर लेता और दिन-रात राम-नाम जपता और राम-नाम के गीत गाता । उस के मन में पश्चाताप की कलख न थी । उस ने कौन पाप किया था जिस के लिये दुखी होता ? पराई औरत की ओर कभी बद निगाह नहीं की । पराये सोने को सदा मिट्टी समझा । मालिक का नमक खाया तो उसे हलाल किया । दुनिया नहीं देखती तो न देखे, राम जी तो सब देखते हैं ! उसे चिन्ता थी केवल अपने बिना मां के बेटे की । वह क्या और कैसे खाता, ओढ़ता होगा ? परन्तु विश्वास भी था—राम जी सब देखते हैं । पत्थर में बन्द जीव की भी जो चिन्ता करते हैं; वे क्या अपने सेवक के बेटे की सुध न लेंगे ?

सेशन जज ने फैसला लिखने में कुछ ऐसा ज़हर भर दिया था कि हाईकोर्ट में भदई की ओर से की गई प्राण-भिक्षा की अपील उस के अपराध की गुरुता के कारण ठुकरा दी गयी ।

जेलर ने भदई को समाचार दिया—"तुम्हारी अपील मंजूर नहीं हुई ।"

"जो राम जी की इच्छा ।" कह कर भदई ने उत्तर दिया ।

उस से पूछा गया—"किसी को मिलना चाहते हो ?" उस ने अपने पुत्र को देखने की इच्छा प्रकट की ।

स्तब्ध और त्रस्त बालक को सीखचों में बन्द पिता के सम्मुख लाकर खड़ा कर दिया गया । वह पिता के वात्सल्यमय हाथों के स्पर्श से दूर था

परन्तु पिता की दृष्टि बालक के उगते कोमल अंगों का स्पर्श कर रही थी।

कल्लू रो पड़ा। भदई की आखों से भी आंसू टपक पड़े। अपने को सम्भाल कर उस ने कहा—"लल्लू रोते नहीं···मर्द बच्चे कहीं रोते हैं···जियो बेटा···! राजा साहब का हाथ तुम्हारे सिर पर है। राम जी उन्हें चिरंजीव करें। बेटा, राजा साहब के चरणों में रहना। जिस का खाओ उस का हलाल करना। यही सब से बड़ा धर्म है। मालिक को जानो। नमक हलाल करो। जाओ बेटा···सुखी रहो!"

पुनिया की होली

पुनिया डाकखाने के बड़े बाबू जी के यहां बच्चा खिलाने पर है। वह सुबह मुंह-अंधेरे आकर नाश्ता तैयार करने में मदद करती है। बाबू जी को दफ्तर जल्दी जाना होता है। कहने को दस बजे जाते हैं पर लड़ाई का ज़माना है। सरकार के हुक्म से घड़ियां एक घंटा आगे चलती हैं। पुराने समय के नौ ही समझिये और फिर जाड़े के दिन। रात साढ़े-आठ, नौ से पहले मुन्ना सोता नहीं; उस से पहले पुनिया घर कैसे लौटे?

बहू जी पुनिया को दिन में एक डेढ़ घण्टे की छुट्टी देती हैं कि अपने घर जा रोटी सेंक, बच्चों को खिला-पिला आये। वह डेढ़ के बजाय तीन-चार घण्टे लगा जैसे-तैसे दिन का काम समेट पाती है। तब वह मुंह में चुटकी भर तम्बाकू दबाये, गली-मुहल्ले के लोगों से बतियाती धीरे-धीरे काम पर लौटती है। बहू जी नाराज होती ही हैं। रोज ही 'चुड़ैल' को निकाल देने की धमकी देती हैं परन्तु पुनिया जानती है, सब ऐसे ही चलता है। बहू जी न लड़के को सम्भाल पायेंगी न उसे निकाल सकेंगी। वह कुछ मुंह लगी भी है। बड़े आदमियों की सेवा करना उस के यहां का पुश्तैनी पेशा है। बात करने का सलीका है। बड़े आदमियों के तौर पहचानती है। मुन्नू को पल भर को छोड़ देगी तो वह दौड़ कर मां से धमा-चौकड़ी करने लगेगा। बहू जी डांटेंगी—तू लड़के को एक मिनट

नहीं सम्भाल सकती, मर गई। क्या मुझे जरा भी काम नहीं करने देगी? धोबी की धुलाई पहाड़-सी पड़ी है, इसे कौन सहेजेगा?

आंखें फैला, पतली कमर को जरा हिला, पुनिया कहेगी—"हाय-हाय, कैसी हैं; लड़का बाहर खेल पल भर को पास आया कि लगीं डांटने! जरा सिर पर हाथ नहीं फेर देतीं। बच्चे का जी छोटा हो जाता है। इन्हें तो अपने काम से ही फुरसत नहीं।

धोबी की धुलाई के सफेद टीलों के बीच बैठी बहू जी मुन्ना की धमा-चौकड़ी पर रीझने लगीं और पुनिया आधे घण्टे को फिर गायब।

बहू जी ने सांझ को फिर पुनिया को निकाल बाहर करने की धमकी दी। लगा कि डर से पुनिया का रंग उड़ गया है। कमीज़ मुन्ना के सामने डाल, आँखें घुमा, इतरा कर बोली—मुन्ना कह दो, हमें नहीं पहिनेंगे यह सब पुराने कपड़े! घर में रोज सैकड़ों खर्च हो जायंगे। एक बच्चा है, उस के लिये कपड़े नहीं! और जब बहुत तनातनी हो जायगी तो वह किवाड़ की आड़ से कह देगी, तो क्या है, निकाल दें! भूखे-बिलखते बच्चों को यहां डाल जाऊंगी, मेरा क्या है...? बहू जी की ही उम्र है। गली-मुहल्ले की रहस-वार्ता समीप बैठ, दबी जुबान में कहती है और सहेलपने का दावा भी है।

रंग सावला जरूर है पर चेहरे पर लुनाई है। बहू जी मौके-बेमौके उस के मैले रहने पर फटकार कर अपनी धुली धोती, पेटीकोट और जम्फर दे देती हैं। पुनिया मुहल्ले में लौटती है तो मसखरी, बोली-ठोली और टुचकारी सुनाई देती है। किसी को आंखें दिखाती, किसी से ओंठ दबाती, बल खाती वह घर पहुंचती है।

पुनिया का घर क्या, कोठरी है। कोठरी भी ढंग की नहीं जैसे घरौंदा हो। जैसे घर को झाड़-बुहार कर कूड़ा बाहर फेंक दिया जाता है वैसे ही सम्पन्न नागरिक समाज की झाड़न-बुहारन भी मुहल्लों और शहरों
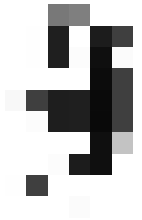
के बाहर फेंक दी जाती है। इन्हें 'स्लम्स' कहते हैं। स्लम्स में रहने वाले लोग सभ्य मनुष्य-समाज की दृष्टि में फलों से उतारे छिलके की भांति बेकार होते हैं। अपनी कोठरी तक पहुंचते-पहुंचते पुनिया की सरलता और मुस्कान समाप्त हो जाती है। उस की छः बरस की लड़की धूल से भरी जटायें फैलाये, कन्धों पर बेबटन का झगुला लटकाये उसे देखते ही पुकार बैठती है—अम्मा, भूख ! और उस का चार बरस का लड़का झगुले के बजाय बेबटन की फतुही पहने, बहती नाक ऊपर खींचता हुआ, बहिन से पहले खाना पाने के लिये दौड़ कर मां का अंचल थाम, 'रोटी-रोटी' चिल्लाने लगता है।

घर के भीतर सवा बरस की सब से छोटी लड़की है, ज़मीन पर घिसटती चलती है। पुनिया के घर लौटने तक वह कोठरी गंदी कर देती है। पुनिया क्या जानती नहीं, सफाई किसे कहते हैं ? बाबू जी के कमरे में फ़र्श की दरी पर अगर कोई तिनका या धागा पड़ा हो तो वह उठा देती है और अगर उन के छः जोड़े जूतों में से किसी एक पर धूल पड़ी हो तो बहू जी को सुना कर पहाड़ी नौकर गुमान को बेपरवाही के लिये डांट देती है। मुन्ना को वह विलायती बेबी सोप छोड़ दूसरा साबुन नहीं लगा सकती। अगर कभी गुमान जल्दी में उसे सनलाइट की टिकिया थमा दे तो उस के माथे पर बल पड़ जाते हैं। मुन्ना की ऊनी जुराब में एक छेद हो जाय तो वह बहू जी को सुना देती—हां, मुन्ना की जुराब फट रही है, हम नहीं जानते। ऐसी सर्दी पड़ रही है, आप को तो ज़रा फिकर नहीं !

मुन्ना के बदन पर पफ़ के बिना पाउडर लगाना उसे अच्छा नहीं लगता। 'जानसन' के पाउडर की जगह अगर 'कस्सन' का पाउडर आ जाय तो त्योरी चढ़ा कर कह देती है—हां, सब कंजूसी मुन्ना के लिये ही तो है। सन्तरा चाहे बाजार में चवन्नी का एक मिले, वह ऊंचे स्वर

में सुना देती है—मुन्ना को फल नहीं मिल रहा है, कब्ज हो जायगा। पुनिया के अपने बच्चे बदन पर धूल लपेटते हैं। वह उन्हें नहला नहीं पाती। दो घड़ी को घर आती है तो दो रोटी सेंक बच्चों के पेट में डाले कि नहलाने बैठे ?

उस का मर्द या तो चारपाई पर पड़ा कहाहता रहता है या कोठरी के बाहर चौंतरे पर दीवार से पीठ सटाये पुनिया के आने की प्रतीक्षा में चिलम पीकर खाँसता रहता है। बाबू साहब के यहाँ से लौट कर बड़-बड़ाती हुई पुनिया बच्चों को धोने और कोठरी साफ करने में लग जाती है। धनकू को सुना कर अपनी किस्मत से लड़ती है—इतना तो नहीं होता कि बच्चों को ही संभाल ले। दिन भर हाड़ तोड़ते हैं और घर आये कि चूल्हा ठण्डा और घर में अंधेरा।"

धनकू अंटी में से दियासलाई का बक्स निकाल उस की ओर फेंक देता है कि मिट्टी के तेल की ढिबरी जला ले। इस ज़माने में एक पैसे का तेल मुश्किल से दो दिन चलता है इसलिये कोठरी में प्राया: अंधेरा रहता है। धमकू सोचता है, मिट्टी के तेल की दूकान पर घण्टों खड़ा रह, पैसे का तेल लाकर उसे फूंक देने से क्या फायदा ? उस से तो अच्छा है पैसे का तम्बाकू लाकर दो दिन काट सकता है पर पुनिया नहीं मानती, ऊंचे स्वर में चिल्लाने लगती है—इसे तम्बाकू की पड़ी है। अंधेरे में बच्चे डरते हैं सो नहीं सूझता ! धनकू का मन ग्लानि से भर जाता है। सवा बरस से आतशिक के जोर के कारण उस के हाथ-पैर नहीं चलते। इस से जोरू की बात उसे यों सुननी पड़ती है। दस रुपया महीना क्या कमा लाती है जैसे मर्द को खरीद लिया है। ऐसी मुंह जोर हो रही है कि बात-बात पर लड़ती है। धनकू के लिये अपनी मर्दानगी का अपमान सहना असम्भव हो जाता तब वह थप्पड़ से, लात-घूंसे से मर्द का अधिकार जमा लेता है। उस समय बच्चे रो पड़ते हैं। पुनिया मार की पीड़ा से

और मन के दुख से खूब चीख-चीख कर रोती है। अपने मर जाने की प्रार्थना दैव से करती है और साथ ही धनकू को सड़-सड़ कर मर जाने का श्राप भी देती जाती है। धनकू सभी प्रकार से असन्तुष्ट जीवन में, अपनी मर्दानगी के प्रभाव से रोती हुई पुनिया को देख कर कुछ संतोष पाता है। आखिर तो वह मर्द है, मालिक है। संसार में उस के पास और कुछ न सही औरत तो है। उस के पांव जब बुरी तरह पिराने लगते हैं तो बनिये की दूकान से धेले का तेल पैसे में उधार ला कर गरम करवा पुनिया से आधी रात तक मालिश करवा सकता है।

पुनिया दस रुपया महीना पाती है। हर महीने आगा अढ़ाई रुपया सूद में ले जाता है। पिछले जाड़ों में पुनिया ने पांच रुपये उधार लिये थे। पहले भी रुपया-दो मौके-मौके लेती रही थी। सूद मिला कर वे बीस हो गये। असल न सही, सूद तो आगा हर महीने लेगा ही। ऐसे ही बनिये का भी बहुत देना हो गया था। बनिये ने पुनिया की चांदी की तमाम चीज-बस्त रखा ली। पांव की अंगुलियों में गिलट के बिछुए भर रह गये हैं। उस के बाप ने कानों में चांदी के भारी-भारी करनफूल बनवा कर दिये थे पर वे तो कभी के बनिये के यहां पड़े थे। सूद बढ़ जाने पर गहना छुड़ाने की उम्मीद न रही तो पुनिया ने वे दे हीं डाले। कानों में वह कागज का डाट बना कर लगाये रहती है कि छेद बन्द न हो जायं। कभी तो कोई चीज कान के लिये वह बनवा ही पायेगी। अभी तो वह जवान है।

पुनिया के बच्चे भूखे रहते हैं पर क्या करे? अपने मन को समझा लेती है। धनकू के लिये वह क्या करे? अपने मन को समझा लेती है परन्तु बच्चों को वह कैसे समझाये! उन का भूख से ठुनकना उस से देखा नहीं जाता। दोपहर में या रात में घर लौटते समय कोई पूरी पराठा या सब्जी-तरकारी मौके से हाथ में लिये चली आती है कि बच्चों को हो जायगा। उस के अपने लिये पैसे का चबैना बहुत और कभी-कभी वह

भी नहीं। बच्चों के लिये रोटी भी सेंक देती है तो 'मरे' नमक या गुड़ के लिये जिद्द करने लगते हैं। इसी से पुनिया घर लौटने से पहले दो कंकड़ी नमक या मौके से छटांक-आधी छटांक चीनी पुड़िया में ले लेती है। कोई चोरी के ख्याल से नहीं; ऐसे ही बच्चों को बहलाने के लिये। उन मरों का जी भी तो सभी कुछ खाने को करता है और फिर इतनी-सी चीनी का क्या है ? चार आदमी चाय पीते हैं तो इतनी तो प्यालों में रह जाती है लेकिन बहू जी यह सब ताड़ती न हों सो बात नहीं पर बेशर्म से क्या कहें ? उस की नीयत ही ऐसी है।

हर महीने वह बहू जी से दो-अढ़ाई पेशगी लेती है। वैसे पांच उधार के भी हो गये हैं। बहू जी हर महीने कह देती हैं, अब पेशगी कौड़ी नहीं दूंगी और पिछला काटूंगी परन्तु समय आने पर वह प्रतिज्ञा नहीं ठहरती। ऐसे ही वह मार्च की पन्द्रह तारीख को हाथ जोड़ कर फिर दो रुपये पेशगी ले गई। वे पांच ही दिन में उड़ गये। अब फिर ज़रूरत थी करती क्या, बरस-दिन का होली का त्योहार था। धनकू दूसरों के दरवाजे बैठ कुल्लड़ पी आता है। वह खुद दूसरों के यहां ज्योनार में जाती है तो अपना मुंह कहां छिपा ले ? उन्नीस तारीख को फिर उस ने बहू जी की खुशामद कर अठन्नी और ली पर वह भी उड़ गई।

पुनिया के घर में अनाज के नाम पर दाना नहीं और दोनों बच्चे होली पर पूरी खाने की रट लगाये थे। हाते में घर-घर से तेल के पकवान बनने की महक उठ रही थी तो उसके बच्चे ही क्या करते ? इन 'मरों' का भी तो जी है ! वह बहू जी से कुछ मांगे, तो किस मुंह से ? नहीं तो फिर करे क्या ? धनकू पिछली रात दो रुपये पेशगी लाने के लिये उससे लड़ता रहा।

× × ×

मुन्ना के बीसों खिलौने थे। टूटने से पहले नये आ जाते थे। फर्श पर बिखरे खिलौने पैरों में दब जाते थे, इससे बहू जी ने आलमारी में भरवा दिये थे। खिलौनों के साथ ही मामा के दिये चांदी के छोटे-छोटे कटोरी-गिलास भी थे। उन्हें पटक-पटक मुन्ना ने बेकाम कर दिया था। वे भी उसी आलमारी में पड़े थे। बहू जी का ख्याल था, जरा सयाना हो जाय, नये सिरे से उसके लिये कुछ बनवा देंगे! पुनिया रोज ही उन चीजों को देखती थी पर कभी उसे कुछ खयाल न आया। बनी हो तो, बिगड़ी हो तो, जिसकी माया थी उसी की थी और मुन्ना की चीज पर वह कैसे नीयत डिगा सकती थी? पर उस दिन उस मुसीबत में पुनिया का मन डिग गया। चांदी का बड़ा सा झुनझुना था जिसमें चांदी की जंजीर लगी थी। पुनिया ने सोचा, कम से कम पांच रुपये भर तो चांदी होगी। रामजस के यहां तीन रुपये में रखा दे तो पहली तारीख को महीना मिलते ही छुड़ा लेगी और जहां की तहां लाकर रख देगी। किसी को पता भी न चलेगा? किस्मत ने चक्कर दिया कि पुनिया ने जंजीर अंटी में खोंस ली।

रात चलते समय उस ने गिड़गिड़ा कर कहा—"बहू जी कल बरस-दिन का त्योहार है, एक दिन की छुट्टी लेंगे।

अगले दिन काम की अधिकता का अनुमान कर बहू जी ने बिगड़ कर कहा—"और क्या, जिस दिन काम हो तो तुम्हें छुट्टी जरूर चाहिये!"

किस्मत की बात है? अगले दिन सुबह ही मुन्ना ने अपनी लकड़ी की बिल्ली पटक-पटक कर तोड़ दी। दूसरा खिलौना उसके लिये निकालने को बहू जी ने आलमारी खोली तो चांदी के कुटे-पिटे बेडौल बरतनों की ओर ध्यान गया; उन्हें गिनने लगीं। देखा तो झुनझुने की जंजीर गायब। उन्हों ने गुमान से पूछा। पुनिया पर उन्हें एतबार था। खाने-पीने की छोटी-मोटी चीज होती तो एक बात थी पर रुपये-पैसे और जेवर के मामले में पुनिया का हाथ सच्चा था। बीसों बेर आलस्यवश जेवर और रुपये

छोटी तिजोरी में रखने के लिये उन्हों ने पुनिया को दिये थे और कभी कोई बात नहीं हुई। बहू जी ने गुमान से पूछा तो वह साफ कसम खा गया। बहू जी ने डांटा—"तो क्या फिर जंजीर को आलमारी निगल गई? मैं कुछ नहीं जानती! अभी निकाल कर दो नहीं तो पुलिस के हाथ पकड़वा दूंगी!"

गुमान को गुस्सा आ गया। एक तो वह 'पहाड़ी ठाकुर' दूसरे उस ने चोरी नहीं की थी अलबत्ता पुनिया को बीस दफे छोटी-मोटी चीज उठा ले जाते देखा था। वह लपकता हुआ घर से बाहर चला गया। पास की पुलिस की चौकी में उस के गांव का सिपाही सुजानसिंह था। गुमान ने सुजानसिंह के सामने अपनी व्यथा रो कर सुनाई और उस के साथ दूसरे सिपाही को ले पहुंच गया पुनिया के घर।

रात बाबू जी के यहां से आते ही धनकू ने पूछा था—"कुछ लाई?"

पुनिया ने उत्तर दिया—"लाती कहां से? मेरा कुछ गड़ा रखा है वहां!"

दोनों में बहुत रात गये तक झगड़ा होता रहा।

पुनिया ने सोच लिया था, जंजीर धनकू के हाथ नहीं देगी। वह मुआ उसे कहीं बेच डाले जंजीर उस की अपनी थोड़े ही है? वह रामजस से केवल दो लेगी और अपनी-दूसरी तारीख को बहू जी से महीना मिलते ही छुड़ाकर फिर जहां की तहां धर देगी। जिस की चीज है उसी की रहे, उसे क्या लेना है!

बरस-दिन का पर्व था। धनकू सुबह ही पुनिया को बाबू जी के यहां जाकर कुछ मांग लाने के लिये विवश करने लगा। पुनिया उस की बात अनसुनी कर झाड़ने-बुहारने में लगी रही। बच्चे उठते ही रंग और पूरी के लिये जिद्द करने लगे। वह बच्चों को समझा रही थी—दिन तो निकल लेने दो! वह सोच रही थी, थोड़ी देर में रामजस के यहां जायगी।

इतने में गुमान दो सिपाही लिये आ गया।

धनकू कुछ समझ न सका। पुनिया ने समझा तो परन्तु उसे विश्वास न आया कि बहू जी ऐसा कर सकती हैं। गुमान ने कहा—"वह जंजीर कहां है?"

"कैसी जंजीर?" आंखें दिखा पुनिया ने कहा, "हम क्या जाने कैसी जंजीर? हम क्या चोर हैं? हमेशा से हम तो बड़े आदमियों के यहां काम करते आये हैं।......कोई चोर हैं क्या हम?......बड़े आये।"

पुलिस वाले की धौंस पर गुमान ने खुद ही कोठरी की तलाशी लेनी आरम्भ की। चीथड़े पलट डाले। इधर-उधर टटोला। खपरैल में खोंसी हुई एक पुड़िया उसने खींच ली और पुनिया चीख पड़ी।

सिपाही ने पुनिया को चौकी पर चलने के लिये कहा। पुनिया सिपाही के पांवों में लिपट-लिपट कर कहने लगी थी—"सिपाही जी, यह जंजीर हमें बहू जी ने खुद दी है; चल के पूछ लीजिये!"

धनकू कांपता हुआ एक ओर चुप खड़ा था। मुहल्ले के लोग चारों ओर गोल बांधे भयभीत आंखों से तमाशा देख रहे थे। पुनिया सब यत्न कर हार गई। बरस-दिन के त्योहार के दिन सिपाही उसे थाने लिये जा रहे थे। उस के बच्चे चीख रहे थे।

लोग कह रहे थे, बुरी नियत का यही फल होता है। कोने का हलवाई कह रहा था, साली का मिजाज नहीं मिलता था? असल बात तो यह थी......आते-जाते उसने पुनिया को कई दफे कहा था—"देखो, दही-रबड़ी खाओ तो ले जाया करो!"

पुनिया डांट देती थी—"देखो लाला, हम बाबू जी से कह देंगे, हां...।"

"तो हम कुछ कहते हैं?" उत्तर दे लाला मुस्करा देते।

कोने के पनवारी ने रोती हुई पुनिया को सिपाहियों के साथ जाते देखा तो सोचा—रही हरामजादी जरूर बदमाश। कै बेर पत्ती मांग-मांग

के ले गयी और जब उसने इशारा किया—जो कहो क्या हाल है……तो झुंझला उठी, ठाकुर तुम तो बड़े कैसे हो। आखिर चोरी में पकड़ी गयी न ! किसी को कुछ गिनती थोड़े ही थी। हराम का खाने वालों का यही हाल होता है।

× × ×

घर लौट गुमान ने गर्व से अपने चातुर्य की घोषणा कर दी। बहूजी कांप उठीं। चिल्लायीं—"मरा तू ऐसा लाट साहब हो गया ! किसने कहा था तुझे यह पंचायत करने को ? जंजीर चली गयी थी तो तुझे क्या ? तेरा क्या गया था ? बड़ा दारोगा बनता है।"

आंखों में आंसू लिये वे बाबू जी के पास पहुंची। बालों और मुंह पर रंग मले वे भूत बने थे। सुनकर घबरा गये। बोले—"तो फिर ?"

रो कर बहू जी ने कहा—"तो फिर क्या, जल्दी जाते क्यों नहीं थाने ! पर्व का दिन है। उसके बच्चे बिलखते होंगे। कैसी हाय पड़ेगी……थाने जाकर कह दो, जंजीर उसे हमीं ने दी थी।"

बाबू जी डाकखाने में बड़े बाबू हैं सही पर पुलिस के नाम से तो डर लगता ही है। बहू की बात भी कैसे टालते……? तिस पर गरीब की हाय का डर। जल्दी मुंह धोया, हजामत बनायी, कपड़े बदल वह गुमान के साथ चौकी पहुंचे।

चौकी में पुनिया एक तरफ बैठी लम्बी सांसें ले रही थी और सिपाही ढोलक बजा कर गा रहे थे—"फागुन में चलत फगुई बयार……।"

बाबू जी ने हवलदार साहब को समझाया।

पुनिया जंजीर लिये घर पहुंची तो विस्मय से देखते लोगों की ओर पीठ किये अभिमान से कह रही थी—"लो, देख लिया !"

बहू जी की नाराजगी की हद नहीं थी। उन्होंने कहा—"नमकहराम
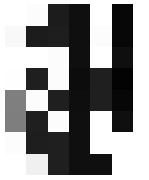
है, चोर है, बदमाश है और उसे कभी घर में नहीं रखेंगे।"

पुनिया कुछ बोलती ही नहीं। मुन्ना को खूब बना-संवार कर गोद में ले बाहर जा बैठती है।

मुहल्ले के लोग समझते न हों सो बात नहीं। जब पुनिया कोने पर से गुजरती है, हलवाई और पनवाड़ी कह देते—"हां भाई, बड़े-बड़े लोगों से ताल्लुकात हैं, हम जैसों को कौन पूछता है!"

हवाखोर

शरीर के भीतरी भागों में जो घाव पैदा हो जाते हैं, एक्सरे से उनकी जांच-पड़ताल कर इलाज की व्यवस्था की जाती है। जिन्दगी में कुछ घाव ऐसे भी लगते हैं जिन्हें छिपाना ही पड़ता है। इन घावों का इलाज, सहने का अभ्यास ही है!

समाज के अत्याचार से पीड़ित व्यक्ति एकान्त खोजने लगता है। समाज से दूर भाग कर वह समय की शरण लेना चाहता है। समय का मरहम ही उसके घावों को भरकर उन पर अंकुर ला सकता है। उसे एकान्त ही अच्छा लगने लगता है। केवल असामाजिक बनकर ही वह समाज से अपना सहयोग और मूक असंतोष प्रकट कर सकता है।

वह घटना घटी थी नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में। दिसम्बर की चौबीस तारीख से युनिवर्सिटी बड़े दिन की छुट्टियों में, मुहर्रम वगैरह मिलाकर जनवरी के पहले सप्ताह तक के लिये बन्द हो गयी। नारायण युनिवर्सिटी में लेक्चरार है। यौवन की पहली अवस्था में उत्तरदायित्व की उपेक्षा उमंग का ही जोर रहता है। नारायण को भी प्रति मास वेतन वेतन के रूप में मिलने वाले रुपयों की अपेक्षा अनेक छुट्टियों का ही महत्व अधिक जान पड़ता है।

लोगों की मर्मभेदी दृष्टि से अपने जख्मी हृदय को बचाने के लिये
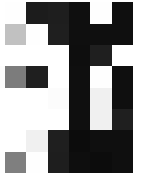
उसने किसी तरह कराहते हुए एक मास बिताया था। छुट्टियां होते ही वह जाड़े के उजड़े नैनीताल में एकान्त ढूंढ़ने चल दिया।

पृथ्वी के साधारण धरातल से हजारों फुट ऊंचे उठे पहाड़ों की असाधारण, उत्तेजक और स्फूर्तिदायक वायु और प्रकृति के अगणित प्रहारों के बावजूद अडिग और उत्तंग बने रहने वाले शिखरों ने उसे समझाया—प्रहार सहकर संसार में सीधे खड़े रहना ही मनुष्यत्व है।

मानसिक परिवर्तन आ जाने पर उसने शिथिल होते जाते जीवन को संभालने की चिन्ता आरम्भ की। गिरता स्वास्थ्य सुधारने का निश्चय किया। पहाड़ की प्राण-पोषक वायु में नियमित भोजन, स्वाध्याय और व्यायाम, प्रातःकाल दूर तक पहाड़ पर चढ़ना और सन्ध्या समय किराये का घोड़ा ले झील के चारों ओर चक्कर लगाना।

गोविन्द अपने घोड़े पर जीन-साज कसे मल्लीताल पर ग्राहकों की प्रतीक्षा में धूप सेंका करता था। घोड़े के सामने थोड़ी घास डाल देता या ग्राहक के न आने पर घोड़े की मलाई-दलाई करने लगता। घोड़ा चढ़ती उम्र का था। खाने को पर्याप्त मिलता और परिश्रम साधारण। पुट्ठे भरे हुए थे। लाल-बादामी रंग के रोयें पालिश से सुनहरी झलक मारने लगते। घोड़े का रूप-रंग और उठान सहज ही शौकीन ग्राहकों को खींच लेती। गोविन्द सवार के पीछे-पीछे भागता चलता। घोड़े वाले प्रायः चढ़ाई पर स्वयं थकान से बचने के लिये घोड़े की पूंछ का सहारा लिये रहते हैं। गोबिन्द घोड़े को थकान से बचाने के लिये चढ़ाई में घोड़े की पूंछ पकड़ स्वयं सहारा नहीं लेता। घोड़े की ममता अपनी थकान से प्रबल थी……वह जीवन का अवलम्ब था।

नारायण सवार नहीं था। सवारी सीखना चाहता था। गोविन्द के घोड़े ने उसे आकर्षित किया। प्रति सन्ध्या सवारी के लिये उसे नियत कर लिया। गोविन्द सांझ को पांच बजे नारायण के लिये घोड़ा हिमालय

होटल में ले आता।

दूसरे मरियल घोड़ों के मुकाबिले में गोविन्द के घोड़े की तारीफ न करना असम्भव था। नारायण ने भी उसे सराहा। सन्तोष और अभिमान से गद्गद् स्वर में, घोड़े के नरम नथनों पर हाथ फेर कर गोबिन्द ने उत्तर दिया—"तो क्या हुजूर ऐसे ही है। अपनी जान से बढ़कर इस की सेवा करता हूं। एक वकत अपने फाका भी हो जाय तो इसे भूखा थोड़े ही रख सकता हूं। सीजन में अढ़ाई-तीन रुपया कमा देता है। तब इसे रोज आध पाव घी देता था। अब भी डेढ़-दो कमाता है तो बारह आने रुपया इसे खिला देता हूं। आठ आने का आजकल दो सेर दाना, एक छटांक घी और आध पाव गुड़। बाबू जी, तभी यह ऐसा बना है।...!"

घोड़ा भी जैसे गोविन्द की बात समझता था। पक्की सड़क पर अपने सुमों की ताल दिखाने के लिये मटक-मटक कर चलने लगता। सवार की इच्छा न होने पर भी, बल्कि उसके भय को समझ खामुखाह तेज दुरकी या सरपट दौड़ने के लिये मुंह मारने लगता।

तीन जनवरी की रात वर्षा के कारण भीषण सर्दी हो गई। नारायण रजाई पर दो कम्बल डाल, सिकुड़ कर लेटा हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा था। होटल की टीन की छत पर वर्षा की बूंदों की गूंज सहसा कड़कड़ाहट में बदल गई। समझा, ओले हैं। इस विचार से ही सर्दी ज्यादा मालूम होने लगी। बत्ती बुझा छत पर ओलों के मार की गूंज में आतंक मिली एक शान्ति की अनुभूति से वह आंखें मूंदे लेट गया। आंखें मूंदे ही सोच रहा था—प्रकृति अपनी सब शक्तियों से मनुष्य के प्राणों पर निर्मम आघात करती है फिर भी मनुष्य अपने जीवन की रक्षा करता ही है। ऐसे ही समाज की परिस्थितियां मनुष्य के मनुष्यत्व को हर कदम पर प्रताड़ित करती हैं फिर भी मनुष्य बने रहने का यत्न तो करता ही है...। उसे नींद आ गयी।

दिन चढ़ा पर सूरज छिपा ही रहा। ठहर-ठहर कर वर्षा हो रही थी। नारायण बल्लम से पहाड़ की चढ़ाई की कसरत के लिये न जा सका। दिन भर खिड़की के सामने बैठा, झील की ओर मुख किये कभी वह पुस्तक के पन्नों को देखता और कभी पहाड़ के ढलवानों और झील पर लुढ़कते रुई के गोलों जैसे बादलों को। नारायण मन की उदासी में उपन्यासों की रोचकता से खीझ कर एक विचित्र-सी पुस्तक साथ लिये आया था और पढ़ रहा था...... सौन्दर्य की धारणा उस से प्राप्त होने वाले संतोष और तुष्टि पर निर्भर करती है।......उस का तर्क कहने लगा इसका अर्थ हुआ, मनुष्य के हृदय की सम्पूर्ण विशालता उपयोगिता पर निर्भर करती है......यानि मनुष्य मूलतः स्वार्थी है। चोट चुपचाप सहने के अभिमान से भरा उस का मन इस पार्थिवता को स्वीकार करने के लिये तैयार न था।

दायें हाथ के अंगूठे को पुस्तक के पन्नों में और दूसरे हाथ के अंगूठे को दांतों से दबाये वह अधमुंदी आंखों से पुस्तक की अपेक्षा अधिक रुचिकर, खिड़की से दिखाई देने वाले दृश्य को देख रहा था। सहसा कोहरा झील की सतह पर छा गया। पहाड़ की ढाल पर वृक्षों की आड़ से दिखाई देने वाले बंगले, कोठियां, झील की विस्तृत हरी नीली सतह और लहरों के थपेड़ों से हिलती छोटी-छोटी नावें सब एक धूमिल पर्दे में अदृश्य हो गयीं। होटल के सामने अत्यन्त समीप गिरजे की चोटी और सड़क भी उसी पर्दे में छिप गयी। फिर सहसा कोहरा डाकखाने के समीप के गलियारे से नीचे लुढ़क चला।

पश्चिम में काठगोदाम के मैदान में जमे बादलों की ओट से सूर्य की किरणें बादलों का पट चीरकर झांकने लगीं। वे वैसी ही मोहक और स्फूर्तिदायक थीं जैसी चिक की ओट से झांकने वाली सहमी हुई आंखें। पूर्व में नयी बरफ का उज्ज्वल हीरक मुकुट पहने चीना-चोटी उघड़ आयी।

सामने की ढाल पर लाल छतें दिखाई देने लगीं, उन पर आधी पिघली बरफ और भीग कर काले दिखाई पड़ने वाले वृक्षों की टहनियों पर लदी बरफ पश्चिम की ओर उतरते सूर्य की, बादलों से लुक-छिप कर आने लाली किरणों के स्पर्श से सिन्दूरी और नीली-धूमिल दिखाई देने लगीं। हलकी-हलकी हवा चलने लगी। वृक्ष झूमने लगे और उन की शाखाओं से बरफ झड़ने लगी। फिर शीघ्र ही सब कुछ स्पष्ट हो गया। झील की हरी-नीली सतह वायु के थपेड़े से ढलमल करने लगी। झील के इस छोर से उस छोर तक फैली लहरें, एक के पीछे एक, समान अन्तर से मल्लीताल की ओर दौड़ने लगीं जैसे झील के विस्तृत केश-पाश की लहरों पर कङ्घियां चली जा रही हों!

अपने शरीर पर कम्बल लपेटते हुए नारायण सोचने लगा—और यदि कहा जाय कि इस सब सौन्दर्य का कोई पार्थिव मूल्य नहीं, इस से किसी का पेट नहीं भरता, तन नहीं ढकता इसलिये यह सौन्दर्य ही नहीं! ......छिः! कहकर उसने पुस्तक को नीचे नमदे पर पटक दिया।

झील-किनारे झूमते वृक्षों के नीचे सूनी, भीगी बरफ से चित्रित सड़क पर गोविन्द अपने सुडौल घोड़े पर चौका भरते होटल की ओर चला आता दिखाई दिया। उस सर्दी और हवा में भी गोविन्द का सीना उभरा हुआ था। घोड़े और सवार की वह निर्भीक मुद्रा नारायण को बहुत भली मालूम हुई। उसे तेजी से अपनी ओर आते वह एकटक देखता रहा, क्या आनन्द ले रहा है जवान!

नारायण की खिड़की से कुछ कदम परे ही, घोड़े से उतर गोविन्द रास थामे खिड़की के नीचे आ खड़ा हुआ। उस तीखी ठण्डी हवा में बाहर निकलने को नारायण का मन न हुआ। घोड़े को देखकर भी वह कम्बल में लिपटा रहा।

ग्राहक को उठते न देख गोविन्द ने उसे सम्बोधन किया—"हुजूर,

हवा खाने नहीं जायेगा ?"

नारायण मुस्करा दिया—"आज तुम खुद ही हवा खाओ !"

सिर लटका कर गोविन्द धीरे से बोला पर नारायण ने सुन लिया—"अरे साहब, हम गरीब लोग क्या हवा खायेगा !"

"क्यों !" नारायण ने पूछा, "तुम्हें हवा खाना अच्छा नहीं लगता ?"

सिर कुछ ऊपर उठा निराशा के से स्वर में गोविन्द ने उत्तर दिया—"हमको तो खाने को अनाज ही नहीं मिलता, हम लोग हवा क्या खायेगा ?"

नारायण चुप हो गया, यह सब अनुपम सौंदर्य नहीं जंच रहा ! वह बहुत देर तक सोचता रहा···उसे केवल रोटी का शौक है···वह हवाखोर नहीं ?

शम्बूक

मुदगल नगरी में शूद्रों और दासों के विद्रोह के कारण विशृंखलता और अराजकता फैल रही थी। अपना परम्परागत धर्म द्विजों की सेवा छोड़ शूद्र और दास मुक्ति की कामना से तपस्या करने लगे।

महर्षि बज्राहुति के कर्म-काण्ड ज्ञान और निष्ठा का यश चारों दिशाओं में फैल रहा था। महर्षि का विश्वास मिथिलाधिपति 'विदेह' जनक के आत्मवाद में हो गया। महर्षि ने ज्ञान लाभ किया—कर्म से फल और आसक्ति का अनिवार्य सम्बन्ध है। सुकर्म का फल सुख भी अविनाशी आत्मा को जीवन की शृंखला में बांध कर उसे मोक्ष से दूर रखता है। शाश्वत आत्मा फल की इच्छा के बंधन से मुक्त होकर ही परमानन्द पा सकता है। उस का उपाय है, कर्म से निवृत्ति !

वे अपना आश्रम छोड़ कर्म से निवृत्ति के लिये एकान्त में चले गये।

महर्षि बज्राहुति का दास शम्बूक भी कर्म निवृत्ति से परमानन्द प्राप्ति का रहस्य जान मुदगल नगरी में आया। शम्बूक ने शूद्रों और दासों को उद्‌बोधन दिया—"अपनी परवशता के कारण शूद्र और दास इस लोक के सुख से वंचित हैं। यज्ञों के अनुष्ठान का साधन और अवसर न होने से वे परलोक की आशा नहीं कर सकते। उन के लिये सुख और मुक्ति का उपाय केवल कर्म निवृत्ति द्वारा मोक्ष प्राप्ति है।
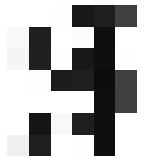
उस ने कहा—"शूद्र और दास केवल भ्रम के कारण परवशता का दुख भोगते हैं। आहार, निद्रा, विश्राम और वांछित पदार्थों का न मिलना यह सब शारीरिक दुःख केवल भ्रम है। इस भ्रम को तप द्वारा प्राप्त ज्ञान के साधन से जीता जा सकता है।"

शम्बूक के ज्ञान-प्रचार और उपदेश से शूद्र और दास अपने द्विज स्वामियों के सेवा प्राप्त करने के अधिकार से विद्रोह कर बैठे। भोजन और दूसरे नितान्त आवश्यक पदार्थों का अभाव उन्हें सताने लगा। उन के मन डगमगाने लगे। शम्बूक ने उन्हें उपदेश दिया—"दुख का यह अनुभव केवल भ्रम है। क्षुधा से अनुभव होने वाले दुख का उपाय है कठोर तप से शरीर को वह दुख अनुभव न होने देना।"

अभाव के दुःख से व्याकुल शूद्र लोग अग्नि ताप कर, शूलों पर लेट कर, शरीर में शूल गड़ाकर भ्रम से अनुभव होने वाले दुखों से ध्यान हटा कर मुक्ति का ज्ञान पाने की चेष्टा करने लगे।

मुदगल का वर्णाश्रम समाज आवश्यक सेवा के अभाव में अपने धर्म, यज्ञ, व्रत, यम-नियम के पालन में असमर्थ हो गया। सब ओर पाप फैलने लगा।

महाज्ञानी ऋत्वक बर्हि उस समय कई दिन तक चलने वाले यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। अनेक समय से रोग-ग्रस्त उन का युवा पुत्र उन के दासों की परिचर्या में था। दासों को छोड़ जाने पर उन का रोगी पुत्र निराश्रय हो गया। पुत्र की चिन्ता से यज्ञ कार्य में लगे विप्र का मन उद्विग्न होने लगा—वे यज्ञ को अपूर्ण छोड़ने का पातक करें या रोगी, मृत्यु के भय से पीड़ित पुत्र की सेवा करें?

उन्हों ने निश्चय किया—पुत्र, कलत्र, धन सम्पदा यह केवल इस लोक के साथी हैं। परलोक में केवल धर्म ही साथ जायगा। यह सब सांसारिक सुख पुण्य-कार्य का ही फल है इसलिये पहले पुण्य-कार्य ही

सम्पन्न करना चाहिये ।

यज्ञ समाप्त होने के साथ ही ऋत्विक का पुत्र उचित सेवा और परिचर्या न पा सकने के कारण मर गया। परमज्ञानी वर्हि पुत्र शोक के आघात से अधीर हो उठे । उन्हें मति विभ्रम होने लगा—क्या यज्ञ के पुण्य कार्य का फल उन्हें पुत्र शोक के रूप में मिला है ? धर्म और भगवान के न्याय के प्रति उन्हें अविश्वास होने लगा ।

पुत्र-शोक का भीषण उद्वेग कम होने पर महाज्ञानी वर्हि की मति स्थिर हुई । वे सोचने लगे—देवताओं का ऐसा भयंकर क्रोध बिना किसी महापाप के नहीं हो सकता । गूढ़ चिन्ता से उन्हें ज्ञान हुआ—वर्णाश्रम धर्म के ह्रास का महापाप चारों ओर अराजकता, अशान्ति और अन्याय फैलाये है । शूद्र और दास ब्राह्मणों और द्विजों के कर्म तपस्या द्वारा मुक्ति प्राप्ति का यत्न कर रहे हैं और ब्राह्मण शूद्रों के नीच कर्म करने के लिये बाध्य हैं । परम्परा का नियम भंगकर पृथ्वी को कंपा देने वाले इसी पाप के फल से पृथ्वी के देवता ब्राह्मण को युवा पुत्र का शोक हुआ । अपने निजी दुख को व्यापक रूप दे वर्हि का हृदय इस पाप का प्रतिकार करने के लिये क्षुब्ध हो उठा ।

महाज्ञानी वर्हि इस पाप की दुहाई देने भक्तवत्सल, रघुकुल सूर्य भगवान राम की शरण अयोध्या पहुंचे । क्षुब्ध ब्राह्मण के आगमन का समाचार सुन भगवान नंगे पांव दौड़े आये और हाथ जोड़ प्रार्थना की—"हे भूदेव, पृथ्वी पर तुम्हारा वचन ही धर्म और नियम है । तुम्हारे आशीर्वाद से ही क्षत्रिय राज्य-सत्ता प्राप्त कर धर्म और न्याय की रक्षा करते हैं ।......दास सेवा के लिये प्रस्तुत है ।"

महाज्ञानी वर्हि से मुदगल नगरी में छाये महापातक और द्विजों के दुख का वृत्तान्त सुन भक्त-वत्सल राम पृथ्वी पर धर्म-रक्षा के लिये तैयार हो गये और उन्हों ने चतुरंगिनी सेना ले मुदगल नगरी के लिये प्रस्थान

कर दिया ।

शम्बूक के अनुयायी दास और शूद्र मुदगल नगर के समीप उपवन में एकत्र हो भांति-भांति के कठोर तपों द्वारा वासनाओं से ध्यान हटा रहे थे । शम्बूक एक गुफा में पंचाग्नि के केन्द्र में सिर नीचे और पांव ऊपर कर वृक्षासन से तपस्या कर रहा था ।

दुष्टों का दलन करने वाले भगवान राम के शूर सैनिकों ने उन मुक्ति की इच्छा करने वाले धर्मद्रोही शूद्रों को बन्दी बना एक मैदान में एकत्र कर दिया । भगवान राम हाथ में कृपाण ले शम्बूक की गुफा में गये और उसे सिर के केशों से खींचते हुये गुफा से बाहर निकाल लाये ।

भय से कांपते हुये बन्दी शूद्रों और विस्मय से आंखें फैलाये, कर जोड़ कर खड़े द्विजों को श्रेणियों के सम्मुख भगवान ने शूद्रक को पटक दिया ।

अपने पांव पर खड़े हो शम्बूक ने देखा—आभापुंज, सर्वहरण मोक्ष-दाता भगवान साक्षात् खड़े हैं । प्रसन्नता से उस के नेत्र चमक उठे—"मेरी तपस्या सफल हुई !" शम्बूक ने कहा, "भगवान मुझे मुक्ति-दान दीजिये !"

राजीवलोचन राम के नेत्र क्रोध से रक्त वर्ण हो गये । उन्हों ने शम्बूक की प्रतारणा की—"मुक्ति धर्म ब्राह्मण का है, शूद्र का नहीं !"

"भगवान, न्याय !" शम्बूक ने भिक्षा मांगी ।

"स्वामी और ब्राह्मण का वचन ही न्याय है ।" मेघ गर्जना से भगवान ने उत्तर दिया । उन का दायां हाथ कृपाण सहित शम्बूक के कंधे से ऊपर उठ गया ।

शम्बूक के कातर नेत्र ऊपर उठे—"भगवान का क्या यही न्याय है ?" उसने क्षीण स्वर में प्रार्थना की ।

भगवान का क्रोध बढ़ गया—"मूर्ख शूद्र, ब्राह्मण का वचन ही न्याय है !" उन्हों ने गर्जन किया ।

"तो फिर मुक्ति की भी इच्छा नहीं !" शम्बूक ने सिर ऊंचा
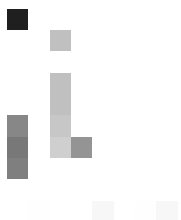
उठा लिया ।

"महापातक !" भगवान के मुख से सक्रोध निकला और उन के हाथ का कृपाण शम्बूक के सिर को पृथ्वी पर गिरा नीचे आ गया ।

भगवान ने आग्नेय नेत्रों से बन्दी शूद्रों की ओर देखा। वे लोग पृथ्वी पर सिर झुका, अधीनता से क्षमा याचना कर रहे थे ।

पृथ्वी हिल उठी...... ।

कर जोड़ खड़े द्विजों की श्रेणी ने श्रद्धा से मस्तक झुका दिये। ब्राह्मणों ने आशीर्वाद मंत्र का उच्चारण किया । उन्होंने कहा—"भगवान के न्याय से देवता प्रसन्न हुये और पृथ्वी पर धर्म की स्थापना हुई ।"

भगवान राम के चरणारविंद में मन लगा विप्र और द्विज वर्ग धर्म संलग्न हो गये ।

अभिशप्त

कहानी संग्रह

यशपाल